73

हिन्दी

शीराज़ा

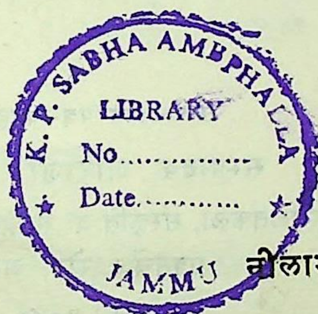
ललितकला, संस्कृति व साहित्य अकादमी जम्मू-कश्मीर जम्मू



हिन्दी

शीराज़ा

१
९
७
०
III



संचालक

नीलाम्बर देव शर्मा

सम्पादक

केहरसिंह 'मधुकर'

ललितकला, संस्कृति व साहित्य, अकादमी, जम्मू ।

वार्षिक ८ रुपये

प्रति दो रुपये

सम्पादकीय पत्र-व्यवहार :

सम्पादक शीराज़ा 'हिन्दी'
ललितकला, संस्कृति व साहित्य अकादमी
एक्सचेंज रोड, जम्मू
फ़ोन : ५०४०

प्रो० नीलाम्बरदेव शर्मा सैक्रेटरी, द्वारा ज० क० अकादमी के लिए प्रकाशित तथा अमर आर्ट प्रैस मोती बाज़ार में मुद्रित हुआ ।

शीराज़ा
(हिन्दी)

लेख

काव्य-धारा

कथा-साहित्य

बिम्ब-प्रतिबिम्ब

दो शब्द

●

शीराजा हिन्दी १९७० का यह तीसरा अंक आप के हाथों में है। इसे संवारने सजाने में अपनी ओर से भरकस प्रयत्न किया गया है जम्मू कश्मीर तथा डोगरी कश्मीरी संबन्धी लेख तथा कविताएं प्रकाश में लाकर देश वासियों को अपने इस प्रदेश से अवगत करवाने की चेष्टा की गई है आशा है आप इसे रोचक पाएं गे।

—सम्पादक

मम्मट और समीक्षा-शास्त्र

—मोहनलाल कौल

संस्कृत समीक्षा-शास्त्र में आचार्य मम्मट का स्थान अद्वितीय और असाधारण है। मम्मट का दृष्टिकोण ध्वनिवादी है और उन की प्रतिभा समन्वयवादी। ध्वनिवाद ने संस्कृत साहित्यालोचन को नवीन आधारभित्ति पर स्थापित कर काव्य और तत्सम्बन्धी अनेक समस्याओं का अंकन करने के निमित्त नितान्त नवीन मानदण्डों का निर्माण किया। ध्वनि-सम्बन्धी काव्यालोचना के सिद्धान्त काव्य के बाह्यात्मक पक्ष की अपेक्षा उसकी आत्मा को छूते हैं। किन्तु साहित्य और उसके मूल्यांकन के मान वदलते तो अवश्य हैं पर मरते नहीं। संस्कृत समीक्षा के अनेक अलंकारवादी, रीतिवादी और रसवादी समीक्षकों ने ध्वनि-सिद्धान्त की कटु आलोचना की और उन की आलोचना को व्यर्थ सिद्ध करने का श्रेय मम्मट को है। वह प्रकाण्ड पंडित थे पर पांडित्य उनको जरा भी छू न गया। वह ऐसे प्रतिभाशाली आलोचक थे जिन्होंने साहित्यालोचन के क्षेत्र में अवरोध की अपेक्षा सिद्धान्तों का ध्वनिवादी दृष्टिकोण से स्थिरीकरण किया। मम्मट की समीक्षात्मक प्रतिभा की अभिव्यक्ति 'काव्य-प्रकाश' में हुई है।

मम्मट कश्मीरी थे। इन का जन्म 11वीं शताव्दी के उत्तरार्द्ध अथवा 12वीं शताव्दी के पूर्वार्द्ध में हुआ था। इस धारणा के मूल में भोजराज की प्रशस्ति में निर्मित "मुक्ता केलि विसूत्रहार गलित:" पद्य है जो मम्मट ने उदात्तालंकार के उदाहरण के रूप में उद्धृत किया है। 'काव्य-प्रकाश' के टीकाकारों के मतानुसार मम्मट की माता का नाम जैयट था और कैयट तथा औव्वट उनके दो अनुज थे। मम्मट ने 'काव्य-प्रकाश' में अपने जन्म तथा वंश के सम्बन्ध में कहीं

कोई विवरण नहीं दिया है। अतः उनका स्थितिकाल और जीवनवृत्त संस्कृत के दूसरे आचार्यों और कवियों की भांति काल्पनिक ही है। परन्तु उनके कश्मीरी होने की बात असंदिग्ध है।

'काव्य-प्रकाश' के 'मंगलाचरण'[1]—सरस्वती की वन्दना में मम्मट ने कविता के स्वरूप का चिन्तन किया है। विधाता की सृष्टि नियति से नियन्त्रित रहा करती है जिसका स्वभाव सुखदुखमोहात्मक है। कवि की सृष्टि सुखदुखमोहात्मक न हो कर 'ह्लादैकमयी' है। कवि काव्य-सृष्टि में स्वतन्त्र है और विधाता की भांति वह 'नियति' शक्ति से परतन्त्र नहीं। कवि की स्वतन्त्रा में ही 'आनन्द' का भाव निहित है। अभिनवगुप्त ने आनन्द और स्वातन्त्र्य को एक रूप माना है। कवि की सृष्टि में आनन्द का संचार होने के कारण ही काव्य-क्षेत्र नवरसरुचिर है। मम्मट ने ध्वनिवादी दृष्टिकोण द्वारा काव्य-स्वरूप का चिन्तन करते समय काव्य की आत्मा का उद्घाटन किया है। काव्य कवि का स्वतन्त्र कर्म है। वह किसी भी बाहिरी शक्ति द्वारा नियमित हो परतन्त्रता में जकड़ा नहीं जा सकता। काव्य-संसार में कवि प्रजापति है और वह इच्छानुसार संसार को बदल सकता है।[2] मंगलाचरण में मम्मट ने कवि की मौलिकता के सत्य को प्रकाशित किया है। कवि काव्य-कर्मरत होकर अपनी प्रतिभा और कल्पना से एक नवीन संसार का निर्माण करने में सक्षम है। मम्मट ने कवि की निर्माण करने की क्षमता और मौलिकता को समझ कर उसकी 'स्वतन्त्रता' के रहस्य का मंगलाचरण में प्रकाशन किया है।

काव्य की रचना यश की प्राप्ति के लिए, धन-सम्पत्ति के अर्जन के लिए, लोक-व्यवहार के ज्ञान के लिए, अमंगल निवारण के लिए आनन्द-लाभ के लिए और कान्ता सम्मित उपदेश के लिए की जाती है।[3] मम्मट से पूर्व अनेक आलंकारिकों ने काव्य के बहुत से प्रयोजन गिनाए थे। भामह के अनुसार काव्य के प्रयोजन धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष की प्राप्ति है। बाद में काव्य के प्रयोजन के

१. नियतिकृतनियमरहिताम् ह्लादैकमयीमनन्यपरतन्त्राम्।
नवरसरुचिरां निर्मितमादधती भारती कवेर्जयति ॥ काव्यप्रकाश

२. अपारे काव्यसंसारे कविरेव प्रजापति। यथास्मै रोचते विश्वं तथेदं परिवर्तते ॥

३. काव्यं यशसेऽर्थकृते व्यवहारविदे शिवेतरक्षतये।
सद्यः परनिर्वृतये कान्तासम्मितयपदेशयुजे ॥—काव्यप्रकाश

रूप में चतुर्वर्ग का उल्लेख रुद्रट, कुन्तक और विश्वनाथ करते हैं। मम्मट भी यश धन, व्यवहार-ज्ञान, आनन्द और उपदेश को काव्य-प्रयोजन गिनते हैं। कालिदास को काव्य-साधना से यश मिला था। धन्वक को धन मिला था। मयूर का अमंगल निवारण हुआ था। अत: यश, अर्थ और अमंगल-निवारण मम्मट ने काव्य-प्रयोजन के रूप में स्वीकार किए हैं। काव्य का मुख्य प्रयोजन आनन्द-विभोर कर उपदेश देने का है। भामह ने भी काव्य का प्रयोजन आनन्द को स्वीकारा था। काव्य से सहृदय को ऐसे उपदेश मिलता है जैसे एक पत्नी पति को उपदेश दे। वास्तव में भारतीय चिन्ताधारा मूलत: अध्यात्मवादी रही है। यहां भौतिकवादी पश्चिम की भांति केवल आनन्द या उपदेश को ही काव्य का प्रयोजन न मान कर मोक्षप्राप्ति का भी साधन माना गया है। भारतीय दृष्टि से काव्य का प्रयोजन प्रेम ही नहीं, श्रेय भी है। अलौकिक भी है। मम्मट ने काव्य-प्रयोजनों का समाहार करके आनन्दात्मक उपदेश को ही काव्य का मुख्य प्रयोजन गिनाया है।

आचार्य मम्मट का काव्य-हेतु निरूपण भी उनकी समन्वयात्मक दृष्टि का परिणाम है। सब से प्राचीन आलंकारिक भामह ने काव्य के उद्भव में प्रतिभा को ही कारण माना। दण्डी के अनुसार काव्य-उद्भव के प्रतिभा, व्युत्पत्ति और अभ्यास ये तीन कारण हैं। आनन्दवर्धन[४] और अभिनवगुप्त प्रतिभा को काव्य-हेतु मानते हैं। वामन एवं रुद्रट ने दण्डी के मत का ही समर्थन किया है। आचार्य मम्मट का कथन है कि शक्ति, निपुणता (व्युत्पत्ति) और अभ्यास के एकत्र होने से काव्य का निर्माण हो सकता है।[५] मम्मट ने कारणत्रय में शक्ति को प्रथम स्थान दिया है। उनके मतानुसार शक्ति कवित्वबीजरूप संस्कारविशेष है। शक्ति वास्तविक रूप से कवि की मौलिकता और निर्माण-क्षमता की प्रतिभा है। भट्ट तौत ने 'नवनवोन्मेष-शालिनी प्रज्ञा' को प्रतिभा कहा है। अभिनवगुप्त के अनुसार 'अपूर्वबस्तुनिर्माणक्षमा प्रवा' प्रतिभा है। प्रतिभा जन्मान्तर का संस्कार है और इसलिए सहज है। मम्मट की 'शक्ति' सम्बन्धी धारणा को आधुनिक भाषा में *intuition* अथवा *poetic faculty* कह सकते हैं। कारणत्रय में दूसरा स्थान व्युत्पत्ति का है। व्युत्पत्ति का अर्थ है ज्ञान। व्युत्पत्ति दो प्रकार की है—शास्त्रीय और लौकिक। शास्त्रीय व्युत्पत्ति अध्ययन से होती है। लौकिकव्युत्पत्ति अवेक्षण

---

४. अव्युत्पत्तिकृतोदोष: शकूतया सव्रियते कवे:। यस्त्वशक्तिकृतस्तस्य स झटित्यवभासते ।। ध्वन्यालोक उद्योत ३

५ शक्तिर्निपुणता लोकशास्त्रकाव्याद्यवेक्षणात्।
काव्यज्ञशिक्षयाऽभ्यास इति हेतुस्तदुद्भवे ।।—काव्यप्रकाश।

से होती है। शास्त्रीय व्युत्पत्ति काव्यात्मक अभिव्यंजना को आवर्जक बनाती है और लौकिकव्युत्पत्ति ही वह वस्तु है जिसका काव्य में प्रकट्टीकरण अभिप्रेत है। अभ्यास को काव्यहेतु स्वीकारते हुए मम्मट का विचार है कि अभ्यास किसी काव्यज्ञ के निर्देशन में करना चाहिए। मम्मट काव्य-हेतु-सम्बन्धी धारणा में आचार्य रुद्रट से बहुत प्रभावित हैं।

आचार्य मम्मट की काव्य-परिभाषा समन्वय की आधारभित्ति पर स्थापित है। उन से पूर्व काव्य-स्वरूप को व्यक्त करने के निमित्त अनेक परिभाषाएं गढ़ी गई थीं। परन्तु अपनी एकांगिकता के कारण काव्य का स्वरूप-निर्देशन करने में समर्थ न हो सकीं। भामह ने काव्य का मूल स्वरूप शब्द-अर्थ में ही माना।[६] रुद्रट ने 'शब्दार्थ काव्यम्' में काव्य का स्वरूप समझा। वामन के अनुसार रीति ही काव्य की आत्मा है।[७] मम्मट के अनुसार वे शब्द अर्थ काव्य कहे जा सकते हैं जो दोष-रहित हों, गुण-युक्त हों और (यदि रसाभिव्यंजक हों तो) अलंकृत हों या न हों।[८] मम्मट के काव्य-लक्षण में शब्द और अर्थ की समष्टि को ही स्वीकारा गया है। अकेला शब्द या अकेला अर्थ काव्य के समग्र रूप को व्यक्त करने में असमर्थ है। 'अदोषौ', सगुणौ, और 'अलंकृतीपुनः क्वापि' शब्द और अर्थ के ही विशेषण हैं। मम्मट की दृष्टि में 'दोष' गुण के विपर्यय-मात्र नहीं अपितु रसादि रूप अर्थ के अपकर्षकारक होने से भावरूप पदार्थ हैं। इसी लिए उन्होंने सर्वप्रथम शब्द-अर्थ काव्य में अदोषता का निरूपण किया। वामन के मतानुसार गुण शब्द और अर्थ के धर्म हैं पर मम्मट गुणों को रस के धर्म मानते हैं। काव्य यदि रसा-भिव्यंजना की क्षमता रखता हो तो अलंकारों का प्रयोग हो या न हो—इस धारणा से मम्मट ने अलंकारवादियों पर गहरा प्रहार किया। संक्षेप में आचार्य का काव्य-लक्षण व्यापक होते हुए काव्य के स्वरूप को पूर्णरूप से व्यक्त करता है।

काव्य-लक्षण के बाद मम्मट ने काव्य-भेदों का निरूपण भी मौलिक ढंग से किया है। उन्होंने काव्य के उत्तम, मध्यम और अवर—ये तीन भेद किये हैं। उन के अनुसार उत्तम काव्य ध्वनि काव्य, मध्यम गुणीभूत व्यंग्य काव्य और अवर चित्र काव्य है। उत्तम काव्य में वाच्यार्थ की अपेक्षा व्यंग्यार्थ अधिक

---

६. शब्दार्थौ सहितौ काव्यं—काव्यालंकार।

७. रीतिरात्मा काव्यस्य—काव्यलंकारसूत्र।

८. तददोषौ शब्दार्थौ सगुणावलंकृती पुनः क्वापि।—काव्य-प्रकाश।

चमत्कार जनक हुआ करता है।[९] मध्यम काव्य में व्यंग्यार्थ वाच्यार्थ की अपेक्षा विशेष चमत्कार नहीं होता।[१०] ध्वनिवादी आचार्य गुणीभूतव्यंग्य काव्य को मध्यम काव्य नहीं मानते। अवर काव्य में व्यंग्यार्थ का अभाव रहा करता है।[११]

आचार्य मम्मट की रस-ध्वनिवाद की मान्यता पर आचार्य अभिनव गुप्त के अभिव्यक्तिवाद का प्रभाव स्पष्टतया लक्षित होता है। रस-निष्पत्ति के सम्बन्ध में भरतमुनि का कथन हैं "विभावानुभावव्यभिचारिसंयोगाद् रसनिष्पत्ति।[१२] सत्रवर्ती 'निष्पति' शब्द का भिन्न भिन्न आचार्यों ने भिन्न भिन्न अर्थ निकाला जिस से रस के सम्वन्ध में अनेक सिद्धान्त चल पड़े। रस-सम्बन्धो भट्ट-लोल्लट का मत उत्पत्तिवाद कहलाता है। वह निष्पत्ति का अर्थ उत्पत्ति निकालते हैं। उत्पत्तिवाद रस की स्थिति सामाजिक में न मानकर रामादि अनुकार्य में ही मानता है। श्रीशंचुक के अनुमितिवाद की दृष्ठि में रस अनुमेष है, विभाव, अनुभाव आदि अनुमापक हैं। भट्टनायक के भुक्तिवाद के अनुसार निस्पत्ति शब्द का अर्थ भोग से है। भट्टनायक ने रस-निष्पत्ति में अभिधा, भावकत्व और भोजकत्व आदि तीन व्यापारों की कल्पना की है। शैवदर्शनार्थ अभिनवगुप्त निष्पत्ति शब्द का अर्थ अभिव्यक्ति करते हैं। उनके मत में रस व्यंग्य होता है। रस की प्रतीति व्यंजना वृत्ति से होती है। अभिनवगुप्त की धारणा के अनुसार स्थायीभाव पहले ही सामाजिक के हृदय में वर्तमान रहता है, और वह स्थायी भाव विभाव, अनुभव और संचारी भावों की सहायता से अभिव्यक्त होकर रस रूपता को प्राप्त करता है। रसास्वादन से एक अपूर्व और विलक्षण आनन्द की उद्‌भूति होती है। अभिनवगुप्त का रसनिष्पत्ति-सम्वन्धी मत अधिक मनोवैज्ञानिक है। मम्मट अभिनवगुप्त के रस-ध्वनि-निष्पत्ति के सिद्धान्त के रूप में स्वीकार करते हैं। उन की रस-सम्ब्रन्धी मान्यता ने अलंकार, रीति और वक्रोक्ति का खण्डन किया है। आचार्य मम्मट के अनुसार लोक में रति आदि स्थायी भावों के ललना आदिरूप कारण और चन्द्रोदय आदि पोषक कारण और शारीकि, मानसिक और वाचिक भांति भांति के कटाक्षादि कार्य एवं चिन्ता, ग्लानि आदि भाव के सहायक होते हैं, वे ही जब काव्य में वर्णित हुआ करते हैं तो उन्हें विभाव,

---

९. इदमुत्तममतिशयिनि व्यंग्ये वाच्याद्ध्वनिर्बुधैः कथितः—काव्यप्रकाश।

१०. अतादृशि गुणीभूतव्यंग्यं व्यंग्ये तु मध्यम्।—काव्यप्रकाश

११. शब्दचित्रं वाच्यचित्रमव्यग्यं व्यंग्यं त्ववरं स्मृतम्—काव्यप्रकाश

१२. नाट्यशास्त्र।

अनुभाव तथा व्यभिचारी भाव की संज्ञा दी जाती है इन्हीं विभाव, अनुभाव और व्यभिचारी भावों से जब रत्यादि स्थायी भाव अभिव्यक्त होता है तब वह रस कहलाता है।[१३]

ध्वनितत्व के सर्वश्रेष्ठ आलोचक आचार्य मम्मट उनके काव्य-प्रकाश के सम्बन्ध में हिन्दी के प्रख्यात लेखक डा० श्यामसुन्दर बाबू ने कहा है—"मम्मट के समान व्यवस्थित और व्यवहारोपयोगी व्याख्या करने वाला दूसरा नहीं हुआ। साथ ही विद्वानों के लिए उनके ग्रन्थ में बड़े-बड़े दार्शनिकों का सार-तत्व भी मिल जाता है। इसी से मम्मट का काव्य प्रकाश भारतीय आलोचना के ग्रन्थों में प्रामाणिक माना जाता है।[१४]

---

१३. कारणान्यपि कार्याणि सहकारीणि यासि च ।
रत्यादेः स्थापिनो लोके तानि चेन्नाट्यकाव्ययो ।।
विभावा अनुभावास्तत् कथ्यन्ते व्यभिचारिणः ।
व्यक्तः स तैर्विभावाद्यैः स्थायी भावो रसः स्मृतः ।। काव्यप्रकाश ।

१४. साहित्यालोचन — डा० श्यामसुन्दर बाबू ।

डुग्गर-दर्शन

भद्रवाह

—सूरज सराफ

जम्मू-कश्मीर के मध्य व्योमस्पर्शी पर्वतों द्वारा परिवेष्ठित भद्रवाह की अत्यन्त सुन्दर घाटी है। इसके सघन कानन, वृक्षाच्छादित पर्वत, तुषारमण्डित शैलशिखर और गिरिउपत्यकाओं में मीलों तक विस्तीर्ण हरित क्षेत्र, पृथुशेखरों से बहती आ रही कूदती फांदती द्रुतगामी सरितायें और नीलाकाश में प्रतिपल उमड़-घुमड़ रहे श्वेत-श्यामल मेघ मिल कर प्रकृति का अतिशय मुग्धकारी रूप प्रस्तुत करते हैं। इन्हीं लुब्धक दृश्यों को देख कर प्रसिद्ध यूरोपियन पर्यटक बीन इतना प्रभावित हुआ था कि उसने अपने यात्रा-वृत्तान्त में भद्रवाह के सम्बन्ध में लिखा कि "हिमालय के आंचल में कश्मीर के पश्चात यह सर्वाधिक सुन्दर स्थान है। इसीलिये इस घाटी को छोटा कश्मीर भी कहते हैं।

भद्रवाह वस्तुतः दो घाटियों से मिलकर बना है। एक का नाम है नाला भलेस की घाटी तथा दूसरी का नाला नीरू की घाटी। भलेस घाटी को प्रकृति ने अपरिमित सौंदर्य प्रदान किया है परन्तु अभी तक इस घाटी का सम्पर्क वाह्य जगत से बहुत ही कम हुआ है क्योंकि यहां तक जाने के लिये अभी तक कोई सड़क नहीं बनी और जो पगडण्डियां हैं वह भी अत्यत दुर्गम हैं, इस कारण इसका अतुल सौंदर्य अभी तक बाहरी लोगों की दृष्टि से ओझल ही रहा है। इसके विपरीत नीरू घाटी जिसे खास भद्रवाह की घाटा भी कहा जाता है, सड़क द्वारा जम्मू-श्रीनगर सड़क से बटोत नामक स्थान पर मिली हुई है और पर्याप्त समय से लोगों को अपनी ओर आर्काषित करतो आई है।

गगनचुम्बी पर्वतों तथा तरुसंवृत प्रयातों द्वारा आवृत्त भद्रवाह् की मनोरम घाटी लगभग सात आठ मील लम्बी तथा डेढ़-दो मील चौड़ी है, जिसके ठीक मध्य में भद्रवाह् का छोटा सा नगर है। इसके आस-पास के पर्वतीय अंचलों में वह बड़ी बड़ी चरागाहें हैं जहां प्रकृति ने मुक्तहस्त हो अपना सौंदर्य कोष लुटाया है और जिन के सम्बन्ध में प्रसिद्ध है कि कठिन से कठिन रोग भी वहां बिना औषध के दूर हो जाते हैं।

जम्मू-कश्मीर सड़क पर बटोत के स्वास्थवर्धक पर्वतीय स्थल से सर्प की भांति टेढ़ी मेढ़ी बल खाती सड़क भद्रवाह् को गई है। इस सड़क के एक ओर सहस्रों फुट नीचे बेगवती चनाब नदी गम्भीर गर्जना करती बहतो है और सड़क के साथ ही साथ अट्ठाईस मील दूर डोडा नामक कस्बे तक चली गई है। डोडा से भद्रवाह् तक सड़क बड़े गहन वनों के भीतर से होकर गई है, जहां स्थान २ पर दुग्ध सदृश श्वेत सलिलमय पहाड़ी नाले सड़क को काटते हुए नीरू नाले में मिल जाते हैं। यह बलखाती हुई सड़क जब एकाएक भद्रवाह् घाटी में प्रविष्ठ होती है तो मनोहर घाटी की शोभा निहार कर दर्शक प्रथम दृष्टि में ही विमुग्ध हो जाता है।

इस छोटी सी घाटी में भद्रवाह् नगर के अतिरिक्त आठ दस और गांव भी हैं। इनमें से सरोलबाग तथा सरतंगल बहुत ही सुन्दर स्थल हैं। घाटी में प्रवेश करते ही सर्वप्रथम आशापति ग्लेशियर पर दृष्टि पड़ती है। यह ग्लेशियर ऐसे लगता है मानों सम्पूर्ण घाटी के शीश पर उज्ज्वल किरीट धरा हो। दिवाकर के प्रखर आलोक में जब यह रजत-किरीट चमकने लगता है तो इस पर कठिनता से ही दृष्टि ठहर पाती है। घाटी में चारों ओर विस्तीर्ण पर्वतीय ढलानों पर सीढ़ियों की न्याईं एक दूसरे के ऊपर बने खेत एक और ही लुभावना दृष्य उपस्थित करते हैं। यदि कहीं फसल लगाते या काटने के दिन हों तो इन खेतों में काम करने के साथ ही साथ गाते हुए स्त्री-पुरुषों के सम्मिलित कंठस्वर मनमोहक वातावरण की सृष्टि कर देते हैं। दूर से देखने पर घाटी के बीच तथा पर्वतों पर फैले हरे अरण्य मखमली हरे कालीन के समान जान पड़ते हैं और इन सब के साथ उच्च गिरी-शिखरों से आ रही चंचल जलधारायें भद्रवाह् रूपी सुन्दर प्राकृतिक चित्र में विलक्षण रंग भर देती हैं। कहने का अभिप्राय यह है कि भद्रवाह् का निर्माण करने में विधाता ने बड़ी उदारता से काम लिया है।

भद्रवाह् की चरागाहों में से स्योज जाई, चिन्ता तथा बालप्रद्री इत्यादि प्रसिद्ध हैं। स्योज समुद्र से लगभग ११००० फुट ऊंचा है तथा भद्रवाह् के कस्बे

से दस मील दूर है। जाई को ऊंचाई आठ हजार फुट है और यह भद्रवाह से सात मील के अंतर पर है और बालपद्री को ऊंचाई ६००० फुट है तथा भद्रवाह से वह दस मील दूर है। चिन्ता की ऊंचाई साढ़े छ: हजार फुट है और भद्रवाह से इसका अंतर चार मील है। जाई में एक वन-विश्रामगृह और एक सराय भी है। यह रमणीय क्षेत्र भद्रवाह की घाटी तथा भलेस घाटी के बीच सीमा का काम देता है। इस सुरम्य क्षेत्र में चारों ओर छाई हरीतिमा के मध्य में से हो कर एक पयोधारा प्रवाहित होती है जो इस की सुन्दरता को और भी आकर्षक वना देती है।

भद्रवाह मात्र अपने लुभावने सौंदर्य के लिये ही विख्यात नहीं बल्कि सांस्कृतिक झांकियों के लिये भी यह प्रसिद्ध है। यहां का कुड्ड नृत्य देश के लोक-नृत्यों में महत्वपूर्ण स्थान रखता है। मध्य जुलाई से लेकर लगभग सितम्बर के मध्य तक इस सुरम्य घाटी में सब ओर नर्सिघों की गूंज, ढोलों की ढम ढम और वासुरियों की मधुर तानें ही कर्णगोचर होती हैं। यह नृत्य रात्री को आरम्भ हो कर प्रभात तक चलता रहता है। इसमें स्त्रियां तथा पुरुष सम्मिलित रूप में नाचते हैं। गिरि अंचलों में बसे गांवों के शान्त वातावरण में रात्रि के समय यह नृत्य ऐसा जादू उत्पन्न करता है जो वर्णनानीत हैं। उसका आनन्दोपभोग तो देखने वाला व्यक्ति हो कर सकता है। नृत्य के संग वज रही बांसुरियों की सुमधुर धुनें निशा की नीरवता को भेद कर मन्द २ पवन के संग दूर २ तक तैरती चली जाती हैं। इन दो मासों में यह नृत्य घाटी के प्रायः सभी गांवों में बारी २ से होता है।

भद्रवाह की दूसरी प्रसिद्ध सांस्कृतिक झांकी वहां की वासुकि नाग की यात्रा है। यह भद्रवाह कस्बे से बारह मील दूर हिमावृत्त शैलशृंगों द्वारा घिरी हुई कैलाश झील के किनारे राखी पूर्णिमा के पश्चात अमावस्या की रात्रि को होती है। इस अवसर पर वहां निकटवर्ती पर्वतों से एकत्रित पहाड़ी स्त्रियां-पुरुष रात भर सरोवर के तट पर नाचते रहते हैं। अगली प्रातः वे झील में बसे वासुकि नाग देवता के दर्शन कर अपनी मनोकामनायें पूर्ण होने की मनौतियां करते हैं। स्वच्छ सुनील जल से परिपूर्ण यह सुन्दर झील सागर से साढ़े चौदह हज़ार फुट की ऊंचाई पर स्थित है।

इसी प्रकार भद्रवाह का मेला पट्ट भी बहुत प्रसिद्ध है। यह एक ऐतिहासिक मेला है जिसका सम्बन्ध मुगल सम्राट अकबर से बताया जाता है। एक

ऊंचे बांस पर अकबर द्वारा भद्रवाह नरेश को भेंट स्वरूप दिया हुआ हिरण्य कलश बंधा होता है, उस पर मूल्यवान स्वर्ण रचित वस्त्र बंधे रहते हैं। इसी वस्तु का नाम 'पट्ट' है। मेले के दिन से दो चार दिवस पूर्व ही से इस 'पट्ट' की पूजा आरम्भ हो जाती है। 'पट्ट' भद्रवाह के प्राचीन राजाओं के कुल पुरोहितों के गृह में पड़ी रहती है। मेले के दिन इसे उठा कर बड़ी धूम-धाम के साथ एक मैदान में लाया जाता है जहां विशाल जनसमूह यह उत्सव देखने के लिये एकत्रित होता है। वहां वासुकि नाग मंदिर के पुजारी इस 'पट्ट' को ले कर बारी २ से नाचते हैं।

कस्बे में बना वासुकि नाग का मंदिर काष्ठनिर्मित है। इसमें समानाकृति की दो काले पाषाण द्वारा निर्मित मूर्तियां हैं। एक मूर्ति वासुकि नाग देवता की है तथा दूसरी एक नाग राजा जीमूतवाहन की जिसने भद्रवाह राज्य को एक समय किसी विपत्ति से मुक्त कराया था। यह मूर्तियां बहुत सुन्दर हैं।

कस्बे में एक गिरि दुर्ग भी है। प्राचीन राजाओं का स्मृति चिन्ह अब यह भव्य दुर्ग ही यहां रह गया है। ऊंची पहाड़ी पर एक ओर खड़ा यह दुर्ग उस समय का स्मरण दिलाता है जब कि भद्रवाह एक छोटा सा स्वतंत्र राज्य था।

बापू के राम

—बी० डी० हंस

राम भक्ति साहित्य के अध्ययन एवं अनुशीलन से ज्ञात होता है कि महात्मा वाल्मीकि राम के आदि भक्त होने का सम्मान पाते हैं । उनके पश्चात ११वीं शताब्दी में रामानुजाचार्य तथा रामानन्द स्वामी अपनी राम-भक्ति के लिए विख्यात हैं। स्वामी रामानन्द जी ने ही नारायण के स्थान पर राम की उपासना का प्रचार-प्रसार किया। कर्मकाण्ड की जटिल साधना के स्थान पर भक्ति-साधना की सरलता को स्वीकार किया। सामाजिक-क्षेत्र में वर्णाश्रम-व्यवस्था के अन्तर्गत उन्हों ने मानवमात्र की समानता के सत्य सिद्धान्त को अपनाया। स्वामी रामानन्द ही ऐसे प्रथम राम भक्त थे जिन्होंने अपने उपदेशों का प्रचार-प्रसार संस्कृत के स्थान पर जन साधारण की हिन्दी भाषा में किया। धर्म के स्वरूप को लोक प्रिय और व्यापक बनाने के लिए हिन्दी भाषा को स्वामी रामानन्द जी ने अपना कर बहुत बड़ा उपकार किया। रामानन्द स्वामी राम-भक्ति शाखा के महान साहित्यकार और उनके भक्त माने जाते हैं।

संत तुलसी राम के अनन्न भक्त और उपासक माने जाते हैं। तुलसी का राम तथा महात्मा बाल्मीकि का राम अथवा रामानुजाचार्य एवं स्वीमी रामानन्द जी का राम एक है। इन राम उपासकों और भक्तों के राम ही एक नहीं, समस्त मानव समुदाय के राम एक हैं ! परन्तु भिन्न-भिन्न दृष्टिकोणों के कारण एक ही राम अनेकों दृष्टाओं के पृथक-पृथक पात्र बन गए हैं। दशरथ, के पुत्र एवं सीता

के पति राम तो एक ही हैं, परन्तु दोनों के हृदय राम के दर्शनों से भिन्न-भिन्न अनुभूतियों का रसास्वादन करते हैं। रावण तथा उसका भ्राता विभीषण राम को अपने-अपने दृष्टिकोण से देखते हैं। मेरा अभिप्राय यह है कि राम तो भारतीय समाज के एक ही राम हैं। उनके उपासक अथवा आलोचक उन्हें अपनी-अपनी भावनाओं से देखते हैं।

हिन्दी साहित्य के अन्तर्गत भक्तिकाल अपने विविध दार्शनिक सिद्धांतों के लिए विख्यात है। साधू-संतों ने जो साहित्य इस युग में भारतीय समाज को दिया, वह हिन्दी साहित्य के लिए वरदान है। ज्ञान मार्ग को प्रधानता प्रदान करने वाला, अद्वैत वेदान्त, महात्मा कबीर आदि संतों की अपार निधि हिन्दी साहित्य की देन है। सूफी-संतों का प्रेम पूर्ण प्रबंध-काव्य भक्ति-काल को एक अनूठी देन है। संत तुलसी का विशिष्टाद्वैतवाद एवं महात्मा सूर का शुद्धाद्वैत-वाद भक्ति-युग की माहन धरोहर है।

महात्मा बाल्मीकि नारद मुनि से पूछते हैं :—

को न्वस्मिन् सांप्रतं लोके गुणवान् कश्च: वीर्यवान् ।
धर्मज्ञश्च कृतज्ञश्च सत्यवाक्यो दृढव्रत: ॥

चारित्रेण च को युक्त: सर्वभूतेषु को हित: ।
विद्वान क: समर्थश्च कश्चैक प्रियदर्शन: ॥

आत्मवान को जितक्रोधो द्युतिमान् को ऽनसूयक: ।
कस्य बिभ्याति देवाश्च जातरोषस्य संयुगे ॥

अर्थात: — "संसार के अन्दर, आज कौन धर्म का पालन करने वाला वीर, अपने कर्तव्य का पालन करने वाला महान विद्वान, सत्य वक्ता एवं वचन का पक्का है? किस व्यक्ति का चरित्र धर्मयुक्त है जो संसार के समस्त प्राणियों के ऊपर दया करता है? कौन ऐसा व्यक्ति है जो अपनी आत्मा का स्वयं स्वामी है तथा विकारों पर विजय पा चुका है? कौन ऐसा योधा है जो युद्ध क्षेत्र में इस प्रकार वास्तविक तथा उचित क्रोध करता है कि जिसे देख कर देवता भी भयभीत हो जाते हैं?

महात्मा बाल्मीकि को महामुनि नारद ने उत्तर दिया :—

इक्ष्वाकुवंशप्रभवो रामो नाम जनै: श्रुत: ।
नितात्मा महावीर्यो द्युतिमान धृतिमानं वशी ॥

बुद्धिमान् नीतिमान् वाग्मी श्रीमान् शत्रुनिबर्हणः।
धर्मज्ञस्संत्यसन्धश्च प्रजानां च हिते रतः ।।

यशस्वी ज्ञानसम्पन्नः शुचिर्वश्यस्समाधिमान् ।
रक्षिता जीवलोकस्य धर्मस्य परिरक्षिता ।।

अर्थात :—"इक्ष्वाक वंश के अन्तर्गत मनुष्यों के द्वारा जो राम के नाम से जाना जाता है वह आत्मविश्वासी तथा महान योधा है। वह महान ज्ञानी तथा अपने संकल्प पर दृढ़ रहने वाला है। वह अत्यंत विद्वान तथा न्याय का उपासक है। अनुपम वक्ता एवं धार्मिकता का महानधनी है। वह अपने शत्रु को नष्ट करने की शक्ति का स्वामी है। वह उचित-वास्तविकता का जानने वाला तथा अपनी प्रतिज्ञा का पालन करने वाला है। अपनी प्रजा के कल्याण की कामना करता है। वह राम, कीर्ति एवं ज्ञान से सम्पन्न है। वह पवित्रता का प्रतीक तथा समस्त ससार के जीवों की रक्षा करने वाला सत्य पथ का राही है। वह दूसरों की रक्षा करने के धर्म को जानता है।"

उपर्युक्त कथन के आधार पर हमें महात्मा वाल्मीकि तथा महामुनिनारद के राम के स्वरूप के दर्शन होते हैं। यही नारद के राम हमारी श्रीमद्वाल्मीकि रामायण के महानायक राम हैं।

तुलसी हिन्दी साहित्य के भक्ति काल के महान संत साहित्यकार हैं। तुलसी राम के परम भक्त और उपासक हैं। उन्होंने अपने देव भगवान राम का चरित्र चित्रण करने के लिए 'रामचरितमानस' की रचना की है। तुलसी के 'रामचरितमानस' की भाषा, शैली एवं विचारों को देख कर काशी के तात्कालीन महानविद्वान मधुसूदन सरस्वती ने कहा था :—

आनन्दकानने कश्चिज्जंगमस्तुलसीतरुः ।
कवितामंजरी यस्य रामभ्रमरभूषिता ।।

श्री रामचरितमानस के महानायक राम संत तुलसी के आराध्य देव हैं। जगत की रचना, पालन एवं संहार के कारण वे स्वयं हैं। वे चराचर जगत के स्वामी हैं। तुलसी के राम जगत के स्वामी होते हुए भी, वे उदारता तथा निष्काम कर्म के प्रतीक हैं। त्याग उनके जीवन की अमर निधि है। सहिष्णुता, कर्मण्यता तथा कष्ट सहन करने की क्षमता के राम प्रतीक हैं।

कुछ साहित्यकारों ने संत तुलसी की उदारता पर संदेह करते दुए कहा है कि तुलसी भी सूरदास "मेरो मन अनत कहां, सुच पावे" अथवा "सूरदास प्रभु कामधेनु तजि, छेरी कौन दुहावे" का प्रचार करते हैं, वहां तुलसी भी श्रीनाथ जी के आगे अपना सिर झुकाने को तैयार नहीं। तुलसी का पद इसका साक्षी है :—

'कहा कहौं छवि आज की, भले विराजे नाथ ।
तुलसी मस्तक तब नवै धनुषवाण लेहु हाथ ।।'

परन्तु ऐसा कहना और प्रस्तुत पद की साक्षी देना उचित प्रतीत नहीं होता। तुलसी के 'रामचरित मानस' के अध्ययन से ज्ञात होता है कि वह तो दुष्ट से दुष्ट प्रांणी को भी प्रणाम करता है। संत तुलसी भगवान कृष्ण के आगे सिर न झुकाये, यह सम्भव सा प्रतात नहीं होता। प्रस्तुत पद से यह प्रतित होता है कि तुलसो श्री कृष्ण को सिर झुकाने के लिए इंकार नहीं करते। हां, उस समय के विलासी काव्य को जो श्री कृष्ण के छैल-छवीले रूप की अभिव्यक्ति करता था, उसे स्वोकार करने के लिए तैयार नहों थे। प्रस्तुत पद में तुलसी ने यह नहीं कहा है कि 'तुम धनुष वाण लेहु हाथ, जिस का अभिप्राय कर्म से होता है। अकर्मण्यता का प्रतीक विलासी काव्य उन्हें स्वोकार नहीं था। तुलसी 'धनुषवाण लेहु हाथ' का संकेत करके तात्कालीन विलासी काव्य पर करारी चोट करते हुए कहते हैं कि विलासता का परित्याग करके तपस्वी और युद्ध वीर बन जाओ — उनके कहने का अभिप्राय यह प्रतीत होता है कि तुलसी कृष्ण-काव्य के अन्तर्गत त्याग और वीरता का समावेश चाहते थे। वे उस समय के विलासी काव्य को किसी भी मूल्य पर स्वीकार करने को तैयार नहीं थे। तुलसी की उदारता की आलोचना करना और उन्हें सम्प्रदायवादी कहना उचित प्रतीत नहीं होता।

भक्ति काल के साहित्य का अध्ययन एवं मनन करने से प्रतीत होता है कि तुलसी से पूर्व भारतीय समाज अत्यंत कठिनाई का अनुभव कर रहा था। हिन्दु तथा मुसलमानों के भेद-भाव के कारण, इस पावन-पुनीत भारत के प्रांगण में खून की नदियां बह रही थी। संत कबीर ने इस बुराई की ओर ध्यान दिया। कबीर भी राम उपासक थे, परन्तु जब उसने देखा कि राम के पावन-पुनीत देश भारत में हिन्दू-मुसलमान खून की होली खेल रहे हैं तो उसने धर्म के बाहरी रूपों पर विचार किया। अतः कबीर ने अपने पुराने दशरथी राम को निर्गुण-निर्विकार ब्रह्म का रूप दे दिया। कबीर कवि अथवा साहित्यकार

की अपेक्षा समाज सुधारक अधिक हैं। उन्होंने जब देखा कि हिन्दू-मुस्लिम एकता के लिए धर्म के वाह्य रूप का खंडन करना अनिवार्य है तो उन्होंने हिन्दू तथा मुस्लिम धर्म के बाह्य विधि-विधानों का निर्भीक होकर खण्डन करना आरम्भ कर दिया। कबीर का प्रभाव तात्कालीन विद्वान समाज पर कम तथा निम्न-वर्ग की जनता पर अधिक हुआ। उनका प्रभाव मुसलमानों पर भी पड़ा। रहीम, रस खान तथा जायसी पर उनका अधिक प्रभाव पड़ा।

कबीर ने हिन्दुओं की मूर्ति-पूजा का खंडन किया। हिन्दुओं की मूर्ति-पूजा से मुस्लिम वर्ग को अधिक चिढ़ है; अतः कबीर के मूर्ति-पूजन खंडन से मुसलमानों का समर्थन मिलना स्वभाविक था। कवीर ने मूर्ति-पूजा का ही खंडन नहीं किया, मुसलमानों के प्रत्येक विधि-विधान का कड़े शब्दों में खंडन किया। नमाज, रोजा, ईद, वकरीद, पीर, पैगम्वर वांग तथा सुन्नत आदि सव ही अंगों का बड़ी तर्क पूर्ण भाषा में खंडन किया। वह सत्य अहिंसा का महा उपासक था धर्म के बाह्य विधि-विधानों को खंडन करने का उसका एक मात्र यही मकसद था कि हिन्दू-मुस्लिम वास्तविकता को ग्रहण करें। मुसलमानों पर कवीर का प्रभाव पड़ा और कुछ मुस्लिम संतों ने इस का परिचय दिया। हिन्दू-मुस्लिम एकता के लिए कबीर ने जो कार्य किया वह भारतीय समाज के लिए महान वरदान है। उसका बोया हुआ सरस वीज अंकुरित हुआ तथा यथा - समय फूला - फला परन्तु दुर्भाग्य ही था कि उसके पश्चात उसकी देखरेख उचित न हो सकी।

भक्ति काल के राम साहित्य पर महात्मा बाल्मीकि की अनूठी तथा अनुपम रचना का कोई प्रभाव नहीं पड़ा, ऐसा कहना अत्यंत अनुचित होगा। संत तुलसी के राम और महात्मा नारद अथवा बाल्मीकि के राम एक हैं। नारद ने उन्हें व्यक्ति की संक्षा दी परन्तु महात्मा वाल्मीकि ने जब उनके चरित्र का चित्रण किया तो राम परमात्मा हैं।

व्यक्तमेष महायोगी परमात्मा सनातनः।
अनादिमध्यनिधनो महतः परमो महान् ॥

संत तुलसी के यही राम उनके 'राम चरितमानस' के भगवान राम हैं। तुलसी के राम उदार एवं प्रेम-प्यार के प्रतीक हैं। कर्म तथा तप-त्याग के आगार हैं। कष्ट सहन करने की उन में अपार क्षमता है। हर जीव पर दया करते हैं। जगत के कल्याण के लिए उनका अवतार होता है। वह मर्यादाओं का

सम्मान तथा आदर करते हैं। राम धर्म के प्रतीक एवं अधर्म के महान शत्रु हैं। संत का हृदय कोमल होता है। वह हर जीव पर दया करता है। उसकी अनुभूतियां सुकोमल तथा उदार होती हैं। संत तुलसी का हृदय महान संत का हृदय है। परन्तु उनका राम एक नारी का बध करता है, यह एक आश्चर्य की बात नहीं, आश्चर्य इस बात पर होता है कि राम के जीवन का प्रथम बध एक नारी से आरम्भ होता है। राम उस समय स्वयं असमंजस में पड़ जाते हैं जब उनके सामने ताड़का आती है और गुरु विश्वामित्र उसका बध करने के लिए राम को आदेश देते हैं। राम वीर लक्षमण की ओर देखते हैं। सम्भवत: राम ने नारी के बध के विषय में कुछ विचार किया हो। अस्त्र-शस्त्र की विद्या में निपुण होने के पश्चात, सर्व प्रथम उन्हें नारी का वध करना पड़ रहा था। राम ने विवेक से काम लिया और तुरंत ताड़का का बध कर दिया। राम के लिए एक नारी का बध उस समय पाप नहीं महान पुण्य था। तुलसी के राम जो स्वयं धर्म थे इस पुण्य के प्रतीक थे।

हमारे बापू महात्मा गांधी भी भारतीय परम्परा के महान संत हैं। यह निःसंकोच कहा जा सकता है कि भारत का जन साधारण समाज उन्हे मोहनदास कर्मचंद गांधी के नाम से नहीं, महात्मा गांधी के नाम से जानता है। उनकी ख्याति का कारण राजनीति नहीं, राम संत-महात्मा की निष्ठा है।

भारतीय साधू-संतों की परम्परा के अनुसार हमारे महात्मा गांधी राम सम्प्रदाय के महान् संत हैं। उनके गुरु राम भक्त सम्प्रदाय के महान आचार्य और विशुद्ध विचारक थे। श्री मोहनदास कर्मचन्द गांधी ने जिस दिन अपने गुरु से दीक्षा ग्रहण की और अपना तन-मन-धन अपने देव (राम) को समर्पित किया, उसी दिन से उनका जीवन एक महान संत की अनुभूतियों से भर गया। वे अपना सब कुछ राम को समर्पित कर चुके थे। अपना कहने के लिए उनके पास कुछ भी अवशेष नहीं था। राम नाम ही उनके पास उनकी अपार निधि थी उसे भी वे अपनी स्वीकार नहीं करते थे क्योंकि उसे भी वे जगत कल्याण के लिए अपने देव राम को समर्पित करते रहते थे। ऐसा करते-करते महात्मा गांधी राम स्वरूप हो गये थे।

महात्मा गांधी प्रत्येक कार्य अपने आराध्य देव राम का मान कर, करते रहे। भारतीय-संस्कृति के अन्तर्गत कर्म का सिद्धान्त इस संस्कृति की आधार शिला है। पुनर्जन्म का सिद्धान्त आर्य-दर्शन का मूलयंत्र है। बौद्ध, जैन, शिख

(सिख) तथा हिन्दू इस सिद्धान्त में पूर्ण निष्ठा रखने के कारण ही एक है। जो व्यक्ति पुनर्जन्म के सिद्धान्त में निष्ठा नहीं रखता, वह आर्य-धर्म का अनुयायी नहीं हो सकता। बौद्ध धर्म, जैन धर्म, सिख धर्म तथा हिन्दू धर्म पृथक-पृथक होते हुए भी एक हैं। पुनर्जन्म तथा कर्म के सिद्धान्तानुसार भारतीय संस्कृति के अन्तर्गत साधू-संतों को अधिक सम्मान देते हुए कहा जाता है कि इन्हों ने पराये हित के लिए देह धारण की है।

महात्मा गांधी ने अपने आराध्य देव राम का कार्य करने के लिए उसका अध्ययन अपने पूर्ण विवेक से किया। उसने देखा समाज का हर वर्ग तथा प्रत्येक व्यक्ति नितान्त कठिनाई का अनुभव कर रहा है। निर्धनता तथा शोषण का साम्राज्य चारों तरफ फैला हुआ है। दरिद्रता और विषमता समाज को निगले जा रही है। शासन तथा पूंजीपति के अत्याचारों से किसान-मजदूर वर्ग भयभीत कांप रहा है। ऊंच-नीच एव रंग-भेद का भूत जगत के लिए अभिशाप बना हुआ है। सब से बड़ा दुख महात्मा गांधी को यह देख कर हुआ कि संसार धार्मिक-संघर्ष का क्षेत्र बना हुआ है। धर्म के नाम पर खून की नदियां बहाई जा रही हैं तथा सम्प्रदाओं के संघर्ष के कारण मानव समाज अनेकों बीमारियों का शिकार हो गया है। हिंसा तथा असत्य का ताण्डव नृत्य देखकर महात्मा गांधी अत्यंत दुखी हुए। उन्हों ने अपने देव राम से मानव समाज के कल्याण के लिए प्रार्थना की। राम ने उन्हें राम-राज्य का वरदान दिया।

जब हम हिन्दी साहित्य के भक्ति काल के संतों का अध्ययन करते हैं, तो ज्ञात होता है कि उनके हृदय में समाज के विकास और उत्थान के लिए महान स्थान है। वे अपने साहित्य के माध्यम से समाज की दूषित नीतियों को दूर करने का प्रयास करते हैं। सत्य, अहिंसा तथा प्रेम से दूषित प्रवृत्तियों को विशुद्ध प्रवृत्तियों में पणित करने का यत्न करते हैं। वे हृदय परिवर्तन के लिए समाज से आग्रह करते हैं। परन्तु सामाजिक-क्षेत्र में रचनात्मिक कार्य करने का अभाव सम्भवतः उनमें इस लिए था कि वे तात्कालीन राजनैतिक विचारधाराओं को अपने अनुकूल नहीं पा रहे थे। महात्मा कबीर एक समाज सुधारक के रूप में आगे अवश्य आये परन्तु शिक्षित समाज के वर्ग को प्रभावित न कर सके। संत तुलसी ने अपने काव्य के माध्यम से समाज को सचेत तथा जागृत अवश्य किया तथा प्रजातंत्र का संकेत किया, परन्तु उस समय का राजतंत्र उसके लिए बाधक था। फिर भी तुलसी को १६वीं शताब्दी का महान प्रजातंत्र उपासक कहा जा सकता है। वह प्रथम साहित्यकार था जिसने भक्तिकाल में प्रजातंत्र का नारा दिया।

महात्मा गांधी ने भारतीय संस्कृति का महान अध्ययन किया था। साधू-संतों के साहित्य और सामाजिक कार्य के गहन अध्ययन के साथ-साथ उन्हों ने भारत की प्राचीन संस्कृतिक परम्पराओं का भी अवलोकन किया। धार्मिक ग्रंथों का अध्ययन उनकी प्रकृति में था। वे अपने विशाल अध्ययन के पश्चात इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि जहां महात्मा बाल्मीकि तथा व्यास जी महाराज के साहित्य में अपने व्यक्तित्व का अभाव है वहां उनमें भारत ही प्रमुख रूप से झलक रहा है। यही बात कबीर तथा तुलसी के लिए कही जा सकनी है। गांधी ने जहां कबीर के साहित्य और विचारों का अध्ययन किया, वहां उन्होंने राम सनेही सम्प्रदाय के संतों का भी अध्ययन किया था। हिन्द्-मुस्लिम एकता के लिए कबीर ने सामाजिक क्षेत्र में जो कार्य किया वह बेमिसाल है परन्तु महात्मा गांधी को उनका धार्मिक खंडन पसंद नहीं था। कबीर के मुकावले में उन्होंने राम सनेही संतों को अधिक पसंद किया। राम सनेहो संतों ने किसी धर्म के बाहरी विधि-विधान का खंडन नहीं किया। वे हिन्दू-मुस्लिम धर्मों का सम्मान करते हुए उनमें एकता और भारतीयता के दर्शन करना चाहते थे। महात्मा गांधो के राम ने अपने भक्त गांधी को तुलसी के प्रजातन्त्र की स्थापना का आदेश दिया। हिन्दू और मुसलमानों के प्रकारवाद जन्य भेदों को दूर करने के लिये कहा "ईश्वर और अल्लाह मेरे ही नाम हैं।"

महात्मा गांधी ने राम राज्य की स्थापना का संकल्प लेकर राजनीति में प्रवेश किया। उनके आराध्य देव राम, जो शक्ति के महा आगार और अपने शत्रु को क्षण में भस्म करने की अहमीयत रखते हैं, सदैव साथ रहते थे। उनका हर कार्य राम की प्रेरणा से होता था। उनके राम विश्वव्यापी हैं। वे समस्त मानव समुदाय के ही संरक्षक नहीं, जीव मात्र फे कष्टों का समाधान खोजते हैं। सत्य, अहिंसा तथा प्रेम के माध्यम से महात्मा गांधी विश्वराज्य अर्थात राम राज्य की कामना करते हैं। उनके राम संसार के राम है। ईश्वर एवं अल्लाह इत्यादि राम के ही अपार नाम है। वे कहते हैं :—

"रघुपति राघव राजा राम,
ईश्वर अल्लाह तेरे ही नाम,
सब को सुमति दे भगवान।"

डोगरा राजवंश और संस्कृत

—गंगादत्त शास्त्री 'विनोद'

डुग्गर धरती वीरता की बपौती साथ संजोए हुए साहित्यपरंपरा की दीपशिखा का प्रकाश फैलाती आ रही है। साहित्य की दिशा में इसका अतीत स्वर्णमय है। विशेषकर यह भूभाग संस्कृत साहित्य का केन्द्र रहा है। स्थानीय संस्कृत साहित्यकारों की परंपरा के संदर्भ में प्रतीत होता है कि जम्मूपति महाराज ब्रजराज देव के युग से संस्कृत वाङ्मय का यह प्रवाह महाराज रणवीर सिंह के युग तक अविच्छिन्न रहा है। महाराज ब्रजराज देव के पूर्व की ऐतिहासिक कड़ी उपलब्ध नहीं होती किन्तु उस युग से संबन्धित संस्कृत साहित्य की यह ऐतिहासिक शृंखला रणवीर सिंह के युग से मोड़ खाती हुई, अन्य जम्मू शासकों के युगों को भी अपने साथ संजो कर वर्तमान युग तक पहुंचती है। महाराज ब्रजराज देव का समय संवत् १८०० से प्रारम्भ होकर १८४३ तक चलता है जैसा कि उनके दरबारी कवि दत्तू के संस्कृत छंदों में लिखे हुए अपने कृष्ण महिम्न स्तोत्र में स्पष्ट लिखा है :

नागदृग्गज भू संज्ञे (१८२८) बर्षे बिक्रम भूपतौ,
स्तवोऽयं कृष्ण जन्माहे दत्ते नानायि पूर्णणताम् ।।

महाराज ब्रजराज देव संस्कृत के महान अनुरागी थे। जम्मू से निराश होकर वे मनावर में जा बसे। परन्तु वहां भी संस्कृत के प्रेम का संवरण नहीं कर पाए और दत्तू तथा गंगाराम जैसे संस्कृत कवियों को उन्होंने यहीं पर रहते हुए अपने दरबार में आश्रय दिया। ब्रजराजदेव जम्मू के प्रतापी राजा रणजीत देव के पुत्र थे। किंतु रणजीत देव अपने छोटे पुत्र दलेल सिंह को अधिक चाहते थे। राज

दरबार में अपने प्रति पिता की उपेक्षा देखकर ब्रजराज रूठकर मनावर में रहने लगे। इधर दलेल सिंह राज्य के सर्वेसर्वा रहे, परन्तु रणजीत देव के अंतिम दिनों में जसरोटे का राजा स्वेच्छाचारी बन बैठा। रणजीत देव ने उसका दमन करने के लिये दलेल सिंह को अखनूर राज्य के कुछ अधिकारियों के साथ जसरोटे की ओर भेजा। वहां पर अखनूरियों के साथ उसकी टक्कर हुई। अंत में किसी दूसरे समय अखनूरियों ने दलेल सिंह को भगा दिया, जिससे रणजीत सिंह की मृत्यु के पश्चात् ब्रजराज मनावर से आकर जम्मू की राजगद्दी पर आसीन हुए। अपने पिछले लंबे प्रवास के समय ब्रजराजदेव ने संस्कृत साहित्य की जो सेवा की उसका पूर्ण विवरण तो नहीं मिलता, किन्तु उपर्युक्त दो संस्कृत कवियों को प्रोत्साहित करते हुए उन्होंने इस परंपरा को अग्रसर किया। संस्कृत के ये दोनों कवि दत्तू तथा गंगाराम उस युग के प्रसिद्ध साहित्यकार थे। इनकी कई रचनाएं भी होंगी जो अनुपलब्ध हैं। किन्तु दत्त् रचित 'कृष्ण महिम्न स्तोत्र' तथा गंगाराम रचित 'मामल्लाष्टक' अब भी विद्याविलास प्रेस से छपे हुए यत्रतत्र मिल जाते हैं। श्री कृष्णाष्टक पर कवि ने स्वयं संस्कृत टीका भी लिखी है जो उनके व्याख्या-चातुर्य का परिचय देती है। श्लोक सब के सब शिखरिणी छंद में लिखे गए हैं और इनकी संख्या ३२ है। इसके अतिरिक्त प्रस्तुत कवि की दो और फुटकल कविताएं मिलती है जो प्राता-सायं कृत्य से सम्बन्धित हैं। ले दोनों कविताएं भी श्री कृष्णाष्टक के अंत में पृथक रूप से छाप दी गई थीं।

श्री गंगाराम रचित मामल्लाष्टक के आठ श्लोक महाराज रणवीर सिंह के दरबारी विद्वान एवं हिंदी कवि श्री नीलकंठ रचित 'कीर्तिविलास' में उद्घृत हैं। इस समय इन दोनों कवियों की मात्र उपर्युक्त रचनायें ही उपलब्ध हैं। वे भी ८०-९० वर्ष पुराने प्रकाशन में छिपी पड़ी हैं। किन्तु इन रचनाओं द्वारा ही डुग्गर धरती की संस्कृत परंपरा की एक शृंखला तैयार कर सकते हैं। इसलिये इतिहास के लिये ये रचनाएं और इनके रचयिता एक विशेष कड़ी हैं।

ब्रजराज के पिता रणजीत देव एक कुशल शासक, सुप्रबंधक तथा विद्या-व्यसनी थे। उनके शासनचातुर्य के कारण जम्मू प्रदेश धनधान्य संपन्न होकर उन्नति की चोटी पर पहुँचा तथा इसकी सीमा लाहौर के शहादरे के साथ जा लगी।

राजा ब्रजराज ने भी अपने राज्यकाल में धरती का गौरव पूर्ववत् कायम रखा। किन्तु पंजाब के महाराजा रणजीत सिंह के पिता महानसिंह ने उसी समय

जम्मू पर आक्रमण कर दिया। ब्रजराजदेव ने स्वल्प साधनों के रहते हुए भी बहादुरी से सामना किया और अंततक लड़कर सं० १८४३ में युद्धक्षेत्र में वीरगति प्राप्त की। इस समय जम्मू के आकाश पर लूटपाट और अग्निदाह का तूफान उमड़ा हुआ था। जम्मू पूर्ण रूप से उजड़ चुका था। ऐसी राजनैतिक उथल पुथल की परिस्थिति की लपेट में आकर ब्रजराजदेव द्वारा प्रज्वलित संस्कृत साहित्य का दीपक कुछ काल के लिये धुंधला अवश्य पड़ गया, जो महाराजा गुलाबसिंह के युग तक धीमा प्रकाश देकर पुन: चमकने लगा।

ब्रजराजदेव का दसवर्षीय बालक युद्ध की लपेट में आ चुका था। वे निस्संतान होकर स्वर्ग सिधारे थे अत: जसरोटे के राजा जैतसिंह, जो दलेलसिंह का लडका था अर्थात् ब्रजराजदेव का भतीजा था, को बुलाकर जम्मू की गद्दी पर बैठाया गया और सूरजसिंह के लड़के मियां मोटासिंह को राज्यप्रबंधक नियुक्त किया गया। इस दौरान संस्कृत साहित्य का दीपक किसी प्रकार जलता रहा।

सूरतसिंह के चार लड़कों में एक जोरावरसिंह था जिसके पुत्र किशोरसिंह के यहां महाप्रतापी गुलाबसिंह का जन्म हुआ। सूरतसिंह ध्रुवदेव का पुत्र तथा रणजीतदेव का भाई था।

जैतसिंह भी संस्कृत के बड़े प्रेमी थे, किन्तु इनका जीवन भी युद्ध में ही व्यतीत हुआ। कारण लाहौर से बार बार आक्रमण हो रहे थे जिनका सामना ब्रजराजदेव ने अंतिम क्षणों तक वीरतापूर्वक किया। युद्ध की यही विरासत जैतसिंह को भी मिली। किन्तु स्वाभिमानी डोगरा अपने रक्त की अंतिम बूंद रहने तक लड़ता रहता है। जैतसिंह ने भी इस व्रत का पालन किया। युद्ध की इस भूमिका में संस्कृत साहित्य के उत्थान को बहुत चोट पहुंची। जैतसिंह के समय संस्कृत के एक ऐसे चमत्कारी विद्वान पैदा हुए जिन्होंने अपने प्रकांड पांडित्य से न केवल डुग्गर को बल्कि काशी को भी चमत्कृत कर दिया। ये थे पं० काकाराम जी शास्त्री जो वेदवेदांग, दर्शन, पुराण, व्याकरण आदि विषयों के पूर्णपंडित होकर काशी गए। वहां के प्रसिद्ध विद्वान्, शेखर के टीकाकार भैरव-मिश्र गोड़पाद जैसे विद्वानों से शास्त्रार्थ करके उन्हें चमत्कृत किया। पं० काका-राम शास्त्री ने इतना विशाल पांडित्य इसी डुग्गर धरती पर प्राप्त किया था। इससे स्पष्ट है कि उस युग में यहां का संस्कृत पठनपान का स्तर काशी के स्तर से कम न होगा, और यह स्तर राजाश्रय से पोषण पाकर ही इतनी उच्चता

पर पहुंचा। पं० काकाराम शास्त्री को काशी की पंडित मंडली में उच्च प्राप्त हुआ। अंत में ८० वर्षों की अवस्था में उन्होंने वहां के मणिकर्णिका घाट पर अपना शरीर छोड़ा। इनकी शिष्य परंपरा आज भी वहां चलती आ रही है। इनका समय संवत् १८२३ से १९०७ तक के लगभग पड़ता है। इनकी कोई रचना उपलब्ध नहीं होती।

जम्मू प्रदेश परंपरा से संस्कृत का गढ़ रहा है। इस प्रदेश में संस्कृत के अनेक ग्रंथ लिखे गए थे। किन्तु कोई इतिहास न होने के कारण आज हमें इस संबंध में विशेष जानकारी प्राप्त नहीं होतो। केवल एक ही ऐसा पहलू है, जिसके द्वारा प्रागू गुलाबसिंह युग के संस्कृत क्षेत्र की समृद्धि के संबंध में हमें कुछ उन्मेष मिलते हैं। ये स्रोत हैं स्थानीय संस्कृत हस्तलेखों का विशाल भंडार जिसे महाराज रणवीर सिंह ने उपलब्ध कर रघुनाथ मन्दिर के पुस्तकालय में सुरक्षित रखा था। किसी स्थान पर संस्कृत लेखों की इतनी बड़ी राशि का मिलना ही उस स्थान की परंपरा को समृद्धि का सूचक है। महाराज रणवीरसिंह का युग संस्कृत साहित्य के लिये इस राज्य में स्वर्णयुग था। इसी युग में महाराज के प्रयत्नों से बहुत सा भाग प्रकाशित भी हुआ। बड़े बड़े विद्वान् जम्मू आकर राजकीय छत्रछाया में रहकर सरस्वती की उपासना करने लगे। प्राचीन हस्त-लेखों का संग्रह भी हुआ। इन संगृहीत हस्तलेखों के निर्माण में कितनी शताब्दियां बीती होंगी और भिन्न भिन्न राजाओं ने इस कार्य में कितना प्रोत्साहन दिया होगा, यह बात स्वयं समझने की है। दूसरा तथ्य यह भी है कि महाराज रणवीर सिंह का संस्कृत के प्रति अगाध अनुराग कुछ तो उनकी व्यक्तिगत विशेषता थी और कुछ उन्हें अपने पूर्वजों की विरासत के रूप में यह अनुराग मिला था जो उनकी बाल्यावस्था में ही उनके साथ जुड़ गया।

डुग्गर प्रदेश का हस्तलेख युग डुग्गर राजवंशावलि के साथ साथ चलता आया है। महाराज गुलाबसिंह के युग तक यह निर्माणकाल ढेरों ग्रंथ तैयार कर चुका था। इस लिखित सहित्य के विषय निम्नलिखित है—

वेद, सूत्र, उपनिषद्, वेदांग, व्याकरण, कोष, छंद, संगीत, काव्य, नाटक, आख्यायिका, धर्मशास्त्र, दर्शन, ज्योतिष, चिकित्सा, जैन दर्शन आदि। आज इन विषयों के हजारों हस्तलेख रघुनाथ पुस्तकालय में सुरक्षित है। इनमें कुछ ऐसे ग्रंथ हैं जो संस्कृत साहित्य की अमूल्य अप्रकाशित संपत्ति है। उनमें से कुछ एक के नाम यहां गिना देना आवश्यक होगा :—

रघुनाथगुणोदय महाकाव्य, धर्मशास्त्रसंग्रह, नीतिकल्पलता, पूजारहस्य, वीर रत्नशेखर शिखा, संक्षिप्तह्निकपद्धति, स्त्रीधर्मनिर्णय, ब्रह्मसूत्रवृत्तिसार, एकाक्षर निघंटु, कल्पसागर, रणवीरसिंह सदाचाररत्नाकर, रणवीर संगीतमहोदधि, रणवीर प्रायश्चित्तप्रकाश, रणवीरज्योतिर्महानिबंध, रणवीरवृत्त रत्नाकर, रणवीर चिकित्साप्रकाश।

उपर्युक्त हस्तलेखों के अंतिम ग्रंथ जो रणवीर नामस्मरण से युक्त हैं उन्हें रणवीरसिंह ने विद्वन्मंडली द्वारा रचाया था। इनके प्रकाशन की व्यवस्था उस समय विद्याविलास प्रेस में किसी कारणवश नहीं हो पाई होगी। किन्तु कुछ प्रकाशित भी हो गए थे। शेष हस्तलेख रणवीर सिंह के युग से अतीव प्राचीन हैं। इन संगृहीत हस्तलेखों का पूर्ण विवरण श्री स्टाईन के कैटेलाग में प्रस्तुत किया गया है। किन्तु दुर्भाग्यवश यह कैटेलाग भी अब अप्राप्य है। रघुनाथ पुस्तकालय में इसकी एक प्रति है जो जीर्ण शीर्ण दिशा में मिलती है। धर्मार्थ ट्रस्ट को चाहिए कि वह इसे पुनर्मुद्रित करे। यह एक अपूर्व कैटेलाग है, जो प्र० सं० हस्तलेखों का विवरण सहित पूर्ण ज्ञान प्राप्त करने में निर्देशक का कार्य करता है। ब्रजराजदेव का युग संस्कृत भाषा के लिये स्वर्णयुग था। दत्त कवि के एक श्लोक से विदित होता है कि महाराज को प्रसन्न करने के लिये संस्कृत के कवि अपना कविकौतुक दरबार में प्रदर्शित करके उनकी कृपा का प्रसाद पाने का प्रयत्न करते थे। इस प्रकार राजश्रय से संस्कृत कविता भी पनप रही थी। श्लोक इस प्रकार है—

आर्जवादिगुणैर्युक्त सद्वृत्तिस्सपदक्रमा।
सतीव कवितेयं मे ब्रजराज मुदेऽस्तुवः॥

इसी समय लगभग १८१२ में मनावर के सुकराल नामक गांव में देवी प्रकट हुई। उसके आस्थान की प्रतिष्ठा महाराज ब्रजराजदेव ने धुमधाम से की। इसमें कवि गंगाराम एवं दत्तू तथा उस युग के प्रसिद्ध कर्मकांडी, तांत्रिक एवं संस्कृत के प्रकांड पंडित श्री सूर्यनारायण जैसे उपस्थित थे। कुलपंडित होने के नाते आचार्य सूर्यनारायण ने ही मंदिर की प्रतिष्ठा कराई थी। यह धार्मिक दृश्य भी उस युग की संस्कृतोन्नति का एक संकेत है। मूर्ति स्थापित होने के बाद ही कवि गंगाराम ने 'मामल्लाष्टक' की रचना संस्कृत छंदों में की, मामल्लदेवी का नाम सुकराल गांव में स्थापित होन के कारण सुकराला देवी पड़ गया, जो आजकल इसी नाम से प्रसिद्ध है।

संस्कृत भाषा के गढ़ मुख्य रूप में भारतीय तीर्थ रहे हैं। इन्हीं स्रोतों से निकलकर संस्कृत सरिता की धाराएं समग्र देश में बहती रहीं। प्रयाग, अयोध्या काशी, मथुरा, हरिद्वार, द्वारका आदि तीर्थ आदि काल से संस्कृत के केन्द्र र हैं और आज भी हैं। प्राय: संस्कृत विद्वानों तथा मनीषियों को स्वभावत: तीर्थ स्थान का निवास अभीष्ट रहता था। इन तीर्थों की शृंखला में महाभारत अनुसार जम्मू प्रदेश भी आ जाता है। इसी कारण यह भूमि विद्वानों और ऋ मुनियों का निवास स्थान रही है। महाभारत के वन पर्व (अध्याय ४०, श्लो ८२) के एक श्लोक से यह स्पष्ट है—

जम्बूमार्ग समाविश्य देर्वाष पितृ सेवितम्।
अश्वमेधमवाप्नोति सर्वकाम समन्वित:॥

जम्मू मार्ग में प्रवेश करने से मनुष्य अश्वमेध यज्ञ का फल प्राप्त कर हुआ सब कामनाएं प्राप्त करता है। यह जम्मू मार्ग देवर्षि और पितरों में सें है। इस उद्धरण में जम्मू मार्ग देवर्षि और पितरों का निवास स्थान होने कारण संस्कृत भाषा का केन्द्र स्वयं सिद्ध है। इस जम्मू मार्ग का निर्देश नि के प्रसिद्ध प्राचीन टीकाकार आचार्य दुर्गाचार्य ने निरुक्त टीका की अध्यायसमा पर लिखा है—इति श्री जम्मूमार्गाश्रम वासिनो भगवद्दुर्गाचार्यस्य कृतौऋज्वर्थायां नि वृत्तौ आचार्य दुर्गाचार्य जो लगभग पंद्रहवीं शताब्दी के मध्य में हुए थे, अ परिचय जम्मू मार्ग निवासी के रूप में देते हैं। उस समय अर्थात् १४५० के आस पास महाराज पाल देव जम्मू की गद्दी पर विराजमान राजा मालदेव की वीरता की कहानियां प्रसिद्ध हैं। ये बड़े बड़े वृक्षों हाथों-हाथ उखाड़ फेंकते थे और बड़ी बड़ी चट्टानों को उठाकर एक स से दूसरे स्थान पर ले जाते थे। दुर्गाचार्य इन्हीं के समकालीन या कुछ पीछे रहे होंगे। दुर्गाचार्य का धुरंधर पांडित्य और उसका अखिल भार स्तर पर कीर्तिकलाप जम्मूमार्ग की ही देन समझनी चाहिए। मालदेव या पुत्र हमीर किसी के भी राज्यकाल में दुर्गाचार्य रहे हों किन्तु उन्हें आश्रय या राजसंमान अवश्य मिला होगा, इसलिये प्राचीन संस्कृत पां सर्वदा राज दरबारों के पोषण में रह कर ही विकासित होता रहा। यह राजपरंपरा ने दुर्गाचार्य जैसे अन्य संस्कृत महारथी भी उत्पन्न किए किन्तु दुर्भाग्यवश आज उनके संबंध में हमें कुछ संकेत प्राप्त नहीं हैं।

ब्रजराजदेव के युग को पार कर जब हम आगे चलते हैं तो राजा जै

का युग आता है। यह स्वल्पकालीन युग संस्कृत प्रचार की दृष्टि से विशेष नहीं मालूम पड़ता क्योंकि इस युग में मियां डीडो का आतंक मचा हुआ था और उसे दवाने के लिये जम्मू सिंहासन परेशान था। महाराज गुलाब सिंह, जो उस समय महाराज रणजीत सिंह के दरबार में उच्च स्थान पर प्रतिष्ठित थे, ने जम्मू आकर इस परेशानी को मिटाया और संस्कृत के लिये मार्ग प्रशस्त किया। श्री गुलाब सिंह जी कैसे महाराज बने, उन्होंने कैसे जम्मू कश्मीर, लद्दाख, तिब्बत आदि के समन्वय से एक वृहत् राज्य की स्थापना की यह एक पृथक् ऐतिहासिक विषय है। सं० १६६५ (ई० १८०६) में महान सिंह ने जम्मू पर पहली चढ़ाई की, जम्मू के राजा जैत सिंह ने गुमट ढक्की पर सेना संगठन किया और द्वार कुछ देर के लिये बंद कर दिया। चौदह वर्ष के बालक ने द्वार खुलवा कर सेना की टुकड़ी साथ लेकर विशाल शत्रु समूह को वीरता के साथ तवी के जंगलों के उस पार खदेड़ दिया। वीरता के इस अद्भुत चमत्कार को सुनकर महाराज रणजीत सिंह ने गुलाब सिंह को लाहौर दरबार में बुला लिया। तभी से गुलाब सिंह ने अपने शौर्य और राजनीतिज्ञता के बल पर उन्नति प्रारंभ की। निरंतर युद्धों में विजय पाकर गुलाब सिंह ने लाहौर दरबार को अत्यन्त प्रसन्न कर लिया। सन् १८२२ ई० में जम्मू का राज्य मिल गया, किन्तु पूर्ण स्वतंत्रता नहीं, जम्मूपति बन कर भी उसे रणजीत सिंह के आज्ञानुसार युद्धों में जाना पड़ता था, इधर जम्मू का राज्य पाकर गुलाब सिंह ने इस प्रांत के छोटे मोटे राज्य जीत कर राज्य की सीमा बनिहाल पर्वत तक पहुँचा दी। तत्पश्चात् लद्दाख और कुछ भाग तिब्बत का जीत लिया। रणजीत सिंह की मृत्यु के पश्चात् कुछ वर्षों के अनंतर जब पंजाब प्रांत अंग्रेजों के हाथ पड़ गया तो सन् १८४६ में गुलाब सिंह ने अंग्रेजों को ७५ लाख रुपये देकर कश्मीर भी ले लिया। इस प्रकार जम्मू, कश्मीर, लद्दाख, तिब्बत का समन्वय करते हुए गुलाब सिंह ने वृहत् राज्य की रचना की। संग्रेजों ने उसे स्वतंत्र राजा सन् १८४६ में घोषित कर दिया था। इन बारह वर्षों के राज्य काल में अर्थात् सन् १८४६ से १८५८ तक गुलाब सिह का जीवन युद्धों में ही बीतने के कारण उसे संस्कृत की उन्नति के लिये समय नहीं मिला। किन्तु महाराजा रणवीर सिंह के साहित्यिक स्वर्णयुग की मूल पृष्ठभूमि के प्रतिष्ठापक गुलाब सिंह ही थे इसमें संदेह नहीं।

दृढ़ धार्मिक होने के नाते उन्होंने उत्तरवाहिनी में गदाधर का विशाल मंदिर सं० १८६८ में बनवाया, जिसके साथ एक संस्कृत पाठशाला, गौशाला

तथा सदावर्त की भी स्थापना की। संस्कृत की दिशा में पुनः नए सिरे से यह आयोजन अपने ढंग का प्रथम था। इसी प्रकार उत्तरवाहिनी के आस पास अविमुक्तेश्वर, रणवीरेश्वर आदि कई मंदिरों का निर्माण किया गया। गदाधर संस्कृत पाठशाला में सामवेद, व्याकरण, ज्योतिष तथा षट्दर्शनों का अध्यापनकार्य होता था। इसके लिये भारत भर के चुने हुए विद्वान् बुलाये गए। डोगरा भूमि के गण्यमान्य विद्वानों को भी इस संस्था में नियुक्त किया गया।

५०० छात्रों के लिये भोजन, अध्ययन तथा आवास का निःशुल्क प्रबंध किया गया। महाराज गुलाबसिंह के इस प्रतिष्ठान ने उत्तरवाहिनी को संस्कृत भाषा का केंद्र बना दिया। इस आयोजन के फलस्वरूप संस्कृत भाषा का देश भर में जिस गति से प्रचार हुआ उसका अनुमान स्वयं किया जा सकता है। इसी प्रकार गुलाब सिंह ने जम्मू के प्रसिद्ध रघुनाथ मंदिर की निर्माणशिला लगभग सन् १८५५ में रखी थी। उसके साथ वृहत् संस्कृत विद्यालय, छात्रावास, छात्रों के लिये भोजनव्यवस्था, सदावर्त आदि की योजना भी साथ थी जिसे रणवीर सिंह ने अपने राज्यकाल में परिपूर्ण किया।

महाराज रणवीर सिंह

राज्य में संस्कृत का स्वर्णकाल स्थापित करनेवाले महाराज रणवीरसिंह का जन्म सन् १८२९ में जम्मू के रामगढ़ स्थान पर हुआ था। महाराज गुलाबसिंह के छोटे भाई सुचेतसिंह ने इन्हें गोद लिया था। इसी कारण इनका बचपन उन्हीं की जागीर में बीता। गुलाबसिंह के महल में विद्वत्ता और धार्मिकता दोनों को प्रश्रय मिला था। इसी कारण दरबारी विद्वानों का प्रभाव तथा संस्कार इनपर बचपन में ही पड़ा होगा। १३ वर्ष की उमर तक राजा सुचेतसिंह के पास रहकर अब रणवीरसिंह अपने पिता महाराज गुलाबसिंह के पास आ गए। महाराज रणवीरसिंह का व्यक्तित्व बड़ा आकर्षक था। सर रिचर्ड अपनी डायरी में लिखते हैं कि रणवीरसिंह के नक्श अति सुन्दर थे। विशाल मस्तक, सीधी नाक, छोटी स्याह तथा घुंघराली दाढ़ी, गोटेदार पगड़ी, माथेपर तिलक, गले में सुन्दर माला, सदेफ पोशाक और छाती पर शासक का तगमा, यह था उनका स्वरूप।

गद्दी पर बैठने पर इन्हें अपने विरुद्ध एक बड़ी भारी साजिश का भी सामना करना पड़ा, जो बाद में कुचल दी गई। सर लाटेंसर, फ्रेडरिक, करी

आदि अंग्रेज अधिकारियों के विचार रणवीरसिंह के प्रति बड़े श्रद्धापूर्ण रहे हैं। इन लोगों ने समय समय पर रणवीर सिंह के संपर्क में आने का अवसर प्राप्त किया था।

महाराज गुलाबसिंह के घरेलू जीवन में संस्कृत के पांडित्य और सनातन धार्मिकता को पूरा प्रश्रय मिला था। महलों में आस्तिकता, कर्मकांड और जप, तप, व्रत आदि की पूर्ण प्रतिष्ठा थी। अगर विज्ञान से जीवन को सभ्यता मिलती है तो धर्म से संस्कृति। संस्कृत का उद्गम धर्म होने के कारण धार्मिक लोग संस्कृति प्रधान होते हैं। यह संस्कृति डोगरा शासकों की परंपरा रही है। डुग्गर जाति में वैदिक एवं पौराणिक धार्मिकता की देन अति प्राचीन है। तलवार और लेखनी का गठजोड़ इस जाति में परंपरा से पाया जाता है। इसी कारण रणवीरसिंह को महलों के इस धार्मिक वातावरण ने अपनी परंपरा प्रदान की। राजकीय विद्वानों से संस्कृत साहित्य के अनुराग का संस्कार मिला। जहां महाराज गुलाबसिंह युद्धों में उलझे हुए थे, वहां राजकुमार रणवीरसिंह अपना राजकुमारसुलभ ऐश्वर्य एवं कोमलता का जीवन महलों में बिता रहे थे। जीवन की इस एकांत निष्ठा तथा एकाग्रता में इन्होंने इन पवित्र संस्कारों को आत्मसात् कर लिया था।

सन् १८५७ में राज्य की बागडोर संभालते ही सर्वप्रथम महाराज रणवीर सिंह को संस्कृत प्रचार को धुन लगी। थोड़े ही वर्षों में उन्होंने संस्कृत-क्षेत्र में अपने राज्य को दूसरी काशी बना दिया। इस स्थिति पर मुग्ध होकर उस युग के प्रसिद्ध संस्कृत कवि चंडीदास ने इस श्लोक में अपने उद्गार प्रकट किए थे—

विद्वद्भिः सर्वदेशीयैः सर्वशास्त्रविशारदैः ।
कृता काशी पुरी येन श्री जम्बू नगरीयमा ॥

महाराज रणवीरसिंह ने संस्कृत के विकास तथा प्रचार के लिले मुख्य रूप से चार प्रचार निश्चित किए थे—

१४ (७०-४)

१. पुस्तकालयों में मुद्रित पुस्तकों के साथ प्राचीन हस्तलेखों के भंडार स्थापित किए गए

२. मंदिर की स्थापना जिनमें संस्कृत का पठनपाठन होता था और

पाठशालाएं स्थापित की जाती थीं।

३. भारत के भिन्न भिन्न प्रांतों से संस्कृत के प्रकांड पंडितों को राज्य में बुलाकर संमानपूर्वक जीविका प्रदान की जाती थी।

४. संस्कृत पुस्तकों का प्रकाशन, जिसके अंतर्गत स्थानीय विद्वन्मंडली द्वारा रचे गए नए नए संस्कृत ग्रंथों का प्रकाशन होता था।

पाठशालाएं:—इस कार्यक्रम के अंतर्गत सन् १८५८ में रघुनाथ मंदिर की प्रतिष्ठा हुई और तभी श्री रघुनाथ संस्कृत महाविद्यालय की स्थापना की गई। इस प्रकार संस्कृत के प्रचारार्थ ५०० विद्यार्थियों के लिये निवास और भोजन की व्यवस्था भी की गई। इसी स्तर पर उत्तरवाहिनी संस्कृत विद्यालय का भी नया संगठन किया गया और वहां के छात्रों की संख्या भी ५०० रखी गई। इन दोनों विद्यालयों में वेद, वेदांग, ज्योतिष, व्याकरण, चिकित्सा, दर्शन आदि विषयों के पृथक् पृथक् विभागीय स्तर पर विद्वानों की नियुक्तियां की गईं। इसके अतिरिक्त राज्य भर में छोटी छोटी अन्य संस्कृत की पाठशालाएं भी स्थापित की गईं। उन सबके मुख्य केंद्र उपर्युक्त दो महाविद्यालय ही थे। रणवीर सिंह की महारानी बंद्रहाली ने भी संवत् १८४६ में पुरानी मंडी मंदिर का निर्माण करवाकर वहां एक संस्कृत पाठशाला स्थापित की जिसमें ५० विद्यार्थियों के निवास तथा भोजन की व्यवस्था की गई। यह पाठशाला तब से प्रारंभ होकर सन् १९३७ तक चलती रही। इस पाठशाला से अनेक संस्कृत विद्वान पैदा होकर राज्य भर में भागवत सप्ताह तथा ज्योतिष, कर्मकांड आदि की प्रौढ़ योग्यता द्वारा यश कमाने लगे। उनमें प्रसिद्ध पं० हाकिमचंद्र शास्त्री थे जिनकी श्रीमद्भागवत में अगाध गति थी। उनके श्रीमद्भागवत सप्ताह में इतना आकर्षण था कि श्रोता इनकी सुरीली कंठध्वनि और श्लोकों की मार्मिक व्याख्या सुनकर सब कुछ भूल जाते। अपने समय में इस क्षेत्र में इनकी बड़ी प्रसिद्धि रही। इसी प्रकार उपर्युक्त दो बड़े महाविद्यालयों से अन्य धुरंधर विद्वान् पैदा होकर देश विदेशों में इस डुग्गर देश की यशपताका फहराने लगे।

प्राचीन हस्तलेख:—इस समय रघुनाथ पुस्कालय में लभभग ४५०० प्राचीन हस्तलेख संगृहीत हैं, जो महाराज रणवीर सिंह ने बड़े परिश्रम से इकट्ठे कराए थे। इसके लिए उन्होंने पं० आशानंद को काशी भेजा और १५००० रुपये खर्च

कर सैकड़ों संस्कृत हस्तलेख वहां से प्राप्त किए। अपने राज्य में भी खोज की गई और सैकड़ों पांडुलिपियां यहां से भी उपलब्ध की गईं। इसी प्रकार विद्यानथ पाठक (काशी), पं० व्यास (पटियाला), पं० रामकृष्ण (जम्मू), गोपाल राम (जम्मू) से भी पर्याप्त धन देकर संस्कृत हस्तलेख खरीदे गए। तत्पश्चात् राजस्थान के एक राजा मंगल सिंह ने भी अपना हस्तलेख भंडार यहीं भेज दिया। इस प्रकार मिलाजुला कर ४५०० सौ के लगभग पांडुलिपियों का यह संग्रह रघुनाथ पुस्तकालय में रखा गया। यह संग्रहकार्य सन् १८६० के लगभग प्रारंभ होकर १८८३ तक चला। १८८५ में महाराज रणवीरसिंह की मृत्यु के बाद महाराज प्रतापसिंह गद्दी पर बैठे। इनके राज्यकाल में मि० स्टाईन को जम्मू बुलाया गया। उन्होंने सन् १८८९ से १८९३ तक इन हस्तलेखों की एक वृहद् सूची तैयार की। इस समय पंडितराज काक, बलभद्र काक, साहिब राम आदि कश्मीरी विद्वानों ने कश्मीर घाटी से भी बहुत से लेख प्राप्त करके इस पुस्तकालय को दिए। डा० स्टाईन उस समय लाहौर विश्वविद्यालय के ओरियंटल कालेज के प्रिंसिपल थे। इस कार्य के लिये उन्हें गोविंद कौल तथा सहज भट्ट नामक दो सहायक दिए गए तथा छः प्रतिलिपिकार। इस संग्रह मे बड़े अमूल्य संस्कृत हस्तलेख हैं। इनमें से एक प्राचीन हस्तलेख डा० ब्लूम फील्ड के हाथ पड़ गया था जिसकी फोटो कापी लेकर उन्होंने उसे इंग्लैण्ड में जाकर छपवाया।

संस्कृत पुस्तक प्रकाशन:—इस कार्य के अंतर्गत महाराज रणवीरसिंह ने दूर-दूर के विद्वानों को बुलवाकर अपनी सभा में रखा तथा संस्कृत के भिन्न-भिन्न विषयों पर उनसे ग्रंथ की सूची मात्र नीचे दी जाती है—

१	अथर्ववेद संहिता—पैल्लाद शाखीया		हस्तलेख
२	अमरकोष हिंदी भाषा सहित		"
३	अमरकोषनाममाला—हिंदी-लद्दाखी भाषानुवाद सहित		"
४	एकाक्षर निघंटु		"
५	कल्पसागर	निर्मित	"
६	चित्तप्रदीप	संपादित	"
७	जातक गिणत स्कंध संग्रह	संपादित	"
८	जातक फल स्कंध	"	"
९	जातक संग्रह	रचित	"
१०	तर्कसंग्रह व्याख्या	"	"

११	दशभाषोदय कोष		"
१२	ताजिक संहिता	संपादित	"
१३	दुर्गाक्रमण रीतिः		"
१४	धनंजयविजय – डोगरी भाषानुवादः		"
१५	धर्मशास्त्र संग्रह	संपादित	"
१६	नीतिकल्पलता (साहिराम)	रचित	"
१७	पंचसायकविवरण "	"	"
१८	पूजा रहस्य सटीक	"	"
१९	श्रीमद्भागवत गीता टीकाविंशतिः	संपादित	"
२०	भावप्रकाश टीका	संपादित	"
२१	भाषाकोष	"	"
२२	भार्कंडेयपुराणाख्यान	"	"
२३	रघुनाथ गुणोदय	रचित	"
२४	रणवीर संगीतमहोदधिः	"	"
२५	रणवीर सदाचाररत्नाकर	"	"
२६	विषहर तंत्र (सं० १८०१) गनेशशास्त्री		"
२७	वीरत्नशेखरशिखा—चिकित्सा ग्रंथ	अनुवाद	"
२८	वीर वैद्यरत्नहार टीका (साहिबराम)—चिकित्सा ग्रंथ	"	"
२९	संक्षिप्ताह्निक पद्धतिः	रचित	"
३०	स्त्रीधर्म निर्णय	"	"
३१	फौज के लड़ाने की किताब	"	"

उपर्युक्त कुछ प्रधान हस्तलेखों का प्रदर्शन हो चुका है। इसके अतिरिक्त कुछ अन्य प्रधान ग्रंथ ऐसे हैं जो महाराज रणवीरसिंह ने विद्वानों से बनवाकर तथा संपादित करवा कर विद्याविलास प्रेस से छपवाए थे। उनके मुख्य-मुख्य नाम ये हैं—

१-गीतापंचरत्न, २-धातुरूपावली, ३-नाचिकेतोपाख्यानम्, ४—मंत्ररामायणम्, ५—रणवीरचिकित्साप्रकाश, ६-रणवीर चिकित्सासुधार, ७—रणवीरज्योतिर्महानिबंध, ८—रणवीरप्रायश्चितप्रकाश, ९—वर्णमाला, १०—सेनाशिक्षा, ११—रणवीरदंडविधान, १२—रणवीरव्रतरत्नाकर, १३—रणवीर भक्ति रत्नाकर, १४—कुछ धर्मशास्त्र संबम्धी संपादित पुस्तकें। रणवीरसिंह ने मुंह मांगा वेतन देकर बड़े-बड़े योग्य विद्वानों को राज्य में लाकर रखा था।

डोगरे संस्कृत विद्वान भी चुन चुनकर इस राजकीय पंडितमंडली में रखे गए थे, उनमें से कुछ प्रसिद्ध विद्वानों के नाम ये हैं—

१–पं० गोपालराम, २–नव्यचंडीदास, ३–पं० दीनानाथ, ४–पं० विश्वरूप ५–पं० निधिपति, ६–पं० नीलकंठ, ७–पं० गणेश दैवज्ञ, ८–पं० महेश, ९–पं० विश्वेश्वर दैवज्ञ, १०–पं० सर्वेश्वर, ११–काशीनाथ शास्त्री, १२–पं० गोकुलचंद्र, १३–पं० गंगाधर, १४–गोविंदाचारी।

उपर्युक्त संक्षिप्त विवरण से यह बात स्पष्ट हो जाती है कि महाराज रणवीर सिंह का युग संस्कृत क्षेत्र में सब युगों से महान है। सन् १८८५ में रणवीर सिंह की मृत्यु के पश्चात उनके बड़े सुपुत्र श्री प्रताप सिंह जम्मू कश्मीर की राजगद्दी पर बैठे। इन्होंने भी अपने पितृपार द्वारा जलाया गया संस्कृत दीपक उसी प्रकार प्रज्वलित रखा तथा संस्कृत पुस्तक प्रकाशन की दिशा में महान् कार्य किया। इनके समय में जम्मू कश्मीर अनुसंधान विभाग की ओर से लगभग १०० हस्तलेखों का प्रकाशन हुआ जिनका विवरण विस्तारभय से यहां नहीं दिया जा रहा है। इसके अतिरिक्त महाराज प्रतापसिंह ने पूजापाठ, कर्मकांड और यज्ञ, तप, दान तथा संस्कृत विद्वानों के संमान में काफी योगदान दिया। इनके युग में विद्वानों की प्राचीन परंपरा तथा संस्कृत के उत्कट पांडित्य का बड़ा षोषण होता रहा और संस्कृत का उपयोग साधारण जनता तक फैला। ९० वर्ष पुराना एक विज्ञापन पत्र मेरे हाथ लगा था जिसमें श्रीमद्भागवत सप्ताह के होने की सूचना आम जनता के नाम प्रसारित की गई थी। विज्ञापन पत्र संस्कृत में छपा था जिसका पहला पद्य इस प्रकार है भविष्यति कथा चात्र आगंतव्यम् महाशयैः तथा इसके नीचे गद्य में लिखा था—एषा सूचना ग्रामे ग्रामे नगरे नगरे परिप्रेषणीया। इस युग में संस्कृत विद्वत्ता का वह स्तर जीवित ही नहीं रहा बल्कि उसमें और नई उपलब्धियां जुड़ीं।

सन् १९२५ में महाराज प्रताप सिंह का देहावसान होने पर महाराज हरि सिंह जम्मू कश्मीर की राजगद्दी पर बैठे। इनके युग में भी रणवीर संबन्धी संस्कृत परंपरा कायम रही। किंतु नए युग के अंग्रेजी प्रसार ने इस परंपरा को हड़पना प्ररंभ कर दिया। यह ग्रासीकरण दिन-दिन बढ़ता ही गया। इसके साथ ही राज्य की प्राचीन संस्कृत परंपरा भी अस्त होती गई, किंतु महाराज हरी सिंह ने महाराज रणवीर सिंह द्वारा स्थापित संस्कृत प्रतिष्ठान, सदावर्त और मठों का पोषण पूर्ववत् चालू रखा। इस युग में यह भी कम न था।

इन्होंने संस्कृत क्षेत्र में अपनी एक नई उपलब्धि यह भी जोड़ दी कि संस्कृत की उच्च शिक्षा प्राप्त करने के लिए शास्त्रियों को बड़ी-बड़ो छात्रवृत्तियों पर काशी भेजा जाने लगा।

सन् १९४७ के अनंतर स्वतंत्रताप्राप्ति के युग में आकर महाराज हरि सिंह के सुपुत्र डा० महाराज कर्ण सिंह ने भी संस्कृत प्रेम की अपनी परंपरा की विरासत को साथ रखते हुए अपने पूर्वजों की इस थाती को अभी तक सुरक्षित रखा है 'यद्यपि आज के नवीन वैज्ञानिक युग में अंग्रेजी के अंधे अनुराग ने जनता की भावना को संस्कृत की दिशा की ओर से मोड़ने के प्रयत्न किए हैं। यह एक युगचक्र है जो परिवर्तन की धुरी पर घूमता हुआ आया है। अब इसे अपना समय लेना ही है।

महाराजा डा० कर्ण सिंह के संस्कृत प्रेम के कारण ही उन प्राचीन हस्तलेखों को नया संरक्षण मिला है। एक रघुनाथ संस्कृत अनुसंधान विभाग की अलग स्थापना करते हुए, इन्होंने संस्कृत शोध कार्य को बड़ा प्रोत्साहन दिया है। इन्हीं की प्रेरणा का फल है कि जम्मू कश्कमीर में अब भी उस प्राचीन का लेखन-कार्य और पठन-पाठन प्रचलित है। श्री रघुनाथ संस्कृत महाविद्यालय में संस्कृत पठन-पाठन का प्रतिष्ठान भी चल रहा है। तथा लेखन कार्य की दिशा में श्री शुकदेव शास्त्री ने लगभग संस्कृत के चार काव्य भी लिखकर प्रकाशित किए हैं। अभी उनकी साधना चल रही है। संस्कृत पुस्तकालय के अध्यक्ष श्री रामकृष्ण शास्त्री ने भी उन दिनों कादंबरी कथा सार, लिखकर इस परंपरा को अग्रसर किया है। इसी प्रकार पं० केदार नाथ शास्त्री ने भी तापी शतक लिख कर संस्कृत की इस नवीन परम्परा को और अधिक योगदान दिया है।

हास्य लेख—

हाथ दिखाइये

—डा० शिवप्रसाद गोयल

एक बार मेरे एक मित्र एक व्यक्ति के साथ आये और बोले, "आप हैं महाज्यौतिषाचार्य, परम ज्ञानी, जगत्-वंद्य पंडित मिठ्ठूस्वामी आयर। आपकी भविष्य-वाणियां बिल्कुल सच होती हैं। आपने बड़े-बड़े लोगों की जन्म पत्रियां बनाई हैं और हाथ देखे हैं और जिसे जो बताया वही हुआ। मैंने सोचा आप भी पंडित जी के ज्ञान का लाभ उठा लें, इसीलिये यहां ले आया हूं।"

मैंने कहा, "बैठिए महाराज! आप से मिल कर बड़ी प्रसन्नता हुई। मेरे योग्य कुछ सेवा?"

पंडित जी बैठते हुए बोले—"बाबू साहब आपकी जन्म पत्री है?"

मैंने सोचा कि पंडित जी लगे हाथ कुछ झटकना चाहते हैं, बोला, "जी नहीं और न मैं बनवाना ही चाहता हूँ।"

पंडित जी बोले, "न सही, शायद आपको कोई ऐसा वैसा बनावटी पंडित टकराया होगा जिस के उल्टा-सुल्टा बताने से ही आपका विश्वास जाता रहा। लाइये, आपका हाथ देखकर पहले आपके वर्तमान और बीते हुए समय की कुछ बातें बतायें, यदि वे ठीक निकली तब तो आप मान जायेंगे कि ज्योतिष सच्ची है।"

मैं बोला, "मैंने यह कब कहा कि ज्योतिष सच्ची नहीं?"

इस पर पंडित जी बोले, "तो फिर हाथ दिखाने में आपकी क्या हानि हो रही है जो आप इतना संकोच कर रहे हैं ? मैं आपसे कुछ मांग थोड़े ही रहा हूँ।"

ग्रौर मैंने न चाहते हुए भी हाथ फैला ही दिया। पंडित जी मेरे हाथ और मुखमंडल को देखते हुए बोले, "बाबू साहब ! आप को प्रोफैसर होना चाहिये, बताइये हैं कि नहीं ?"

मैंने कहा, "जी है तो ठीक ही।"

फिर बोले, "और आपकी पैतृक सम्पत्ति भी होनी चाहिये जिसके विषय में भाइयों में झगड़ा चल रहा होगा। बोलिये ठीक है न ?"

पंडित जी को व्यक्तिगत जीवन की गुप्त बातें भी इतनी ठीक ठीक बताते देख मुझे आश्चर्य तो हुआ पर उसे छिपाते हुए बोला, "जी कहते तो आप ठीक हैं। पैतृक सम्पत्ति भी है और अदालत में झगड़ा भी चल रहा है।"

फिर बोले, "आप रिसर्च भी कर रहे हैं।"

मैंने कहा, "जी हां, कर तो अवश्य रहा हूँ।"

फिर कहने लगे, "अब तो आपको विश्वास हुआ कि हम जो कहते हैं, ठीक कहते हैं। हम भूत, भविष्यत्, वर्तमान—तीनों कालों की बातें जानते हैं। अच्छा, तुम को एक बात ग्रौर बताते हैं, फिर न कहना कि हमें कोई ज्योतिषी नहीं मिला। देखिए, आपका काफी रुपया उस बैंक में था जो अभी फेल हुआ है। पर आप घबराइये नहीं, आपको वह रुपया मिलेगा अवश्य, देर भले ही हो जाये।"

मैंने कहा, "ज्योतिषी जी ! कहते तो आप ठीक हैं पर कहीं आप उसी बैंक के कोई दलाल तो नहीं कि आपको सारी बातें पता हैं ?"

पंडित जी तपाक से बोले, "राम राम कहो बाबा !"—भला सन्यासियों को बैंक से क्या मतलब ? आपको अब भी विश्वास नहीं है तो आप कोई तीन प्रश्न पूछिये। आप अपने प्रश्न कागज़ पर लिखकर रख लीजिये। हम आपके प्रश्न और उनके उत्तर आपको बता देंगे। पर प्रश्न पूछने के हम पांच रुपये लेते हैं।" यह कहकर वे मेरे मुंह की ओर देखने लगे।

"कोई बात नहीं महाराज," मैं बोला और एक कागज़ पर तीन प्रश्न लिखकर कागज़ को एक लिफाफे में बन्द कर मैंने पांच रुपये के नोट सहित वह लिफाला पंडित जी के सामने सरका दिया।

पंडित जी विजयोल्लास में बोले, "आपका पहला प्रश्न है कि सम्पत्ति के अपने मुकदमे में आप जीतेंगे या नहीं। सो सुनिये, उसमें आपकी अवश्य जीत होगी, पर खर्च काफी करना पड़ेगा।"

अपने हृद्‌गत भावों को दबाता हुआ मैं बोला, "जी महाराज।"

"आपका दूसरा प्रश्न है," पंडित जी बोले, "कि आप पी० एच० डी० कब हो जायेंगे। सो पी-एच० डी० का आपका योग दो वर्ष बाद पड़ता है।" फिर कुछ रुक कर वह कहने लगे, "और आपका तीसरा प्रश्न है कि आप आई० ए० एस० के कम्पीटीशन में सफल होंगे या नहीं, सो आप अपने अन्तिम प्रयास में अवश्य सफल होंगे बोलिये, यही थे न आपके प्रश्न ?"

मैंने कहा, "लिफाफा आपके सामने है, देख लीजिये।"

लिफाफा खोला गया, प्रश्न थे—१. ईंट अधिक लाल होती है या महावर की गोली ? २. क्रिकेट की गेंद बड़ी होती है या टेबिल टैनिस की ? ३. आप मूर्ख है या मैं।

प्रश्न देखकर पास में बैठे मेरे मित्र बगलें झांकने लगे, पर पंडित जी दिखावटी पारा चढ़ा कर बोले, "बाबू साहब, आप हमारी हंसी करते हैं। हम आपसे कुछ नहीं लेंगे, पंडितों का अपमान करने वाले स्वयं अपमानित होते हैं।"

में बोला, "पंडित जी, आपने ऐसे वैसों के ही हाथ देखे होंगे। अब मेरे हाथ देखिये।" और मुझे बाहें ऊंची करते देख पंडित जी बिना पोथी-पत्री संभाले ही हवा हो गये और मित्र महोदय भी खिसिया कर चल दिये।

एक दिन मैं जनता-द्रुतगामी (*Janata-Express*) से दिल्ली जा रहा था कि पास ही सीट पर बैठे एक त्रिपुण्डधारी विशालकाय सज्जन जिनके सिर पर सफेद पगड़ और कंधे पर रेशमी चादर पड़ी थी, बोले, "बच्चा ! कहां तक चलोगे ?" पहले तो मैं समझा कि सचमुच किसी बच्चे से प्रश्न पूछा गया है, पर सारे डिब्बे में कोई बच्चा न दीख पड़ा। इतने में उनका हाथ अपने कंधे तक आता देख मैंने कहा, "जहां तक यह गाढ़ी ले जायेगी।"

"बच्चा ! तू हमसे हंसी करता है ।" वे पगगड़धारी सज्जन बोले, "हम त्रिलोक और त्रिकाल की बातें जानते हैं। तेरे माथे का त्रिशूल बताता है कि तू एक दिन बहुत बड़ा आदमी होगा। एक पाव दूध बाबा को पिला दे तो ला तेरा हाथ देखें।"

मैंने कहा, "महाराज ! फिर तो आप सचमुच बड़े ग्रादमी हैं।" आपके चरणों में तो सारी दुनियां को टूट पड़ना चाहिये, पर यह नहीं समझ में आया कि त्रिलोकदर्शी होते हुए आप प्रदर्शनी देखने दिल्ली जा रहे हैं, वह तो आपके ग्रन्तर्चक्षुओं के सामने यहीं छा जानी चाहिये।

"बच्चा ! महात्माओं की वाणी में यों शंका करना या उनकी हंसी उड़ाना अच्छा नहीं होता, मन पर काबू कर। तुझे तो बहुत बड़ा आदमी बनना है।"

अब तक गाड़ी के उस डिब्बे के सब व्यक्ति हमारे चारों ओर जमा हो गये थे। सामने की सीट पर एक फौजी अफसर बैठे थे, उनके कंधे पर लगे तीन स्टार से मैं समझ गया था कि वे कैप्टन हैं। मुझे छोड़कर डिब्बे के प्रायः सब व्यक्ति अपना अपना हाथ दिखाने को उत्सुक थे। तभी वे फौजी अफसर बोले, "लीजिये महाराज ! मेरा हाथ देखिये।"

"बच्चा ! वैसे तो हमारे पास बड़े-बड़े राजा महाराजा और फौजी अफसर हाथ दिखाने अपना भाग्य पूछने आते हैं", महात्मा जी बोले, "पर हमारे पास इतना समय कहां कि हम सब की सेवा कर सकें ? इसीलिये बहुतों को निराश होकर लौटना पड़ता है। पर गाड़ी की बात है, लाइये आपका हाथ देख दें। आपके नागेश सा'ब हमारे पास आये थे और हमने उन्हें बताया था कि वे कुछ दिनों में कमाण्डर होने वाले हैं। उनका वृहस्पति लगन में पड़ा था और फेट-लाइन एकदम स्ट्रांग थी और आज आप देख ही रहे हैं कि वे चीफ कमाण्डर हुए।"

"अब कुछ बताइयेगा भी या गड़े मुर्दे ही उखेड़ते रहेंगे ?" कैप्टन साहब ने प्रश्न किया।

"लाइये हाथ ज़रा आगे कीजिये, "महात्मा जी बोले," देखिये साहेब ! हमने आपको पहले तो कभी नहीं देखा ! पर ग्रापका नाम गुरदित सिंह है न ? और आप पंजाब रिजमेण्ट में हैं ?"

"बिल्कुल ठीक", कैप्टन साहब उछल पड़े और बोले, "आप में तो जादू की करामात है, कुछ और बताइये।"

सब लोग बड़े ध्यान से सुन रहे थे कि मैंने बीच ही में टोका, "गुस्ताखी माफ हो सरदार जी ! यदि आपको एतराज न हो तो आपके विषय में मैं महात्मा जी से एक बात पूछ लूं ?"

"पूछिये, पूछिये," कैप्टन साहब बोले, "इसमें एतराज की क्या बात है ?"

"महात्मा जी, जरा यह भी बता दीजिये," मैंने कहा, कि साहब की तरक्की कब होने वाली है और वे कमाण्डर कब होंगे ?"

महात्मा जी बोले, "बच्चा ! तू बीच में न बोल, यों प्रश्न खराब हो जाता है। अच्छा खैर अभी बताते हैं। साहब आपका फेट-लाइन भी बहुत बढ़िया है। आपकी तरक्की बस तीन चार महीने में ही होने वाली है। कमाण्डरी में तो अभी देर है, पर जमादार होने ही वाले हैं।"

कैप्टेन साहब सुनते ही आग बबूला हो गये, बोले, "हरामज़ादा कहीं का ! कैप्टेन से हमें जमादार बनाता है।"

शोर गुल और कहकहे में किसी को कुछ ध्यान न रहा। जब देखा तो गाड़ी गाज़ियाबाद स्टेशन पर खड़ी थी और महात्मा जी अदृश्य थे।

कैप्टन साहब मुझसे बोले, "आपने खूब ताड़ा ! पर इसने मेरा नाम और पता कैसे बता दिया ?"

"यह भी इन लोगों के हथकन्डे हैं।" मैंने कहा, "आपका नाम, रैंक और रेजिमेण्ट तो आपके बक्स पर लिखे हैं। उसने बक्स रखते समय भांप लिया होगा। पद के स्थान पर 'के०' से वह कुछ समझ न सका होगा, इसीलिये बता नहीं सका। अक्सर नये रंगरूट और एन० सी० ओ० इनके हत्थे चढ़ जाते होंगे। उसने पूछ लिया होगा कि तुम्हारा बड़ा अफसर कौन होता है और उनके बताने पर समझा होगा कि जमादार फौज का कोई बड़ा अफसर होता है। इसीलिये बता बैठा।"

यह सब पढ़कर आप कहेंगे कि हाथ न दिखाया जाए तो क्या कायरों की तरह पीठ दिखाई जाय ? ज्योतिष विद्या के कुछ माने नहीं ? कायरो (*cheiro*)

आदि का हस्तरेखा विज्ञान सब झूठ है ? मैं कहता हूं कि है भी और नहीं भी। आप कहेंगे, 'सो कैसे ?' लीजिये, सुनिये।

कभी-कभी हंसी-मज़ाक में की गई भविष्य वाणी तक सच हो जाती है, चाहे उसे व्यक्ति की कल्पना कहिये या कही गई बात का मनोवैज्ञानिक प्रभाव। नेपोलियन के विषय में प्रसिद्ध है कि फ्रांस के शासक होने से पूर्व वे अपने मित्रों के हाथ देखा करते थे तथा अनेक विनोद पूर्ण बातें बताया करते थे। एक बार अपनी मित्र-मंडली में सबका हाथ देखते देखते वे जनरल हाशे के समीप पहुँचे जो पहले से ही अपना हाथ निकाले बैठे थे। नेपोलियन हाशे के हाथ को देखकर अपने आश्चर्य के भाव को दबाते से दीख पड़े और अपेक्षा के ढंग पर उसे जोड़ते हुए अगले हाथ की ओर बढ़ गये। हाशे ने स्वाभाविक भद्दे मज़ाक के स्वर में नेपोलियन की चुप्पी का कारण पूछा।

"तुम हंसते हो", नेपोलियन बोला, "जाओ मैं तुम्हें कुछ नहीं कहना चाहता।" किन्तु उसकी दृष्टि कहे गये शब्दों का साथ नहीं दे रही थी और इसी लिये हाशे तथा सब उपस्थित लोगों की रहस्य जानने की उत्सुकता बढ़ी। "तुम जानना ही चाहते हो ?" नेपोलियन ने तीक्ष्ण दृष्टि और दृढ़ स्वर से पूछा, "तो सुनो, तुम्हारा जीवन बहुत थोड़ा शेष है, तुम ग्यारह महीने के भीतर मर जाओगे।" यह कहकर वे फिर अगले हाथ की ओर बढ़ गये मानों अपनी भविष्यवाणी के परिणाम से उन्हें कोई प्रयोजन नहीं। हाशे को उस समय बड़ा क्रोध आया और उनके सब साथियों ने ऐसी भद्दी मज़ाक करने पर नेपोलियन को बहुत बुरा भला कहा जबकि नेपोलियन केवल हंसी में एक बलवान मनुष्य पर कल्पना के प्रभाव का परीक्षण कर रहे थे।

और कदाचित् आपको जानकर आश्चर्य होगा कि कुछ ही समय बाद हाशे को जनता ने नेपोलियन के शक्ति-संचय के मार्ग में बाधक समझा तथा वे ठीक उसी, समय के भीतर मर गये जो नेपोलियत के मुख से पहले ही निकल चुका था।

संभव है इस लेख को पढ़कर बहुत से हाथ देखने वाले मेरे हाथ गर्म करने की सोचें किन्तु वे ऐसा कष्ट न करें और अपने कथकण्डों से बाज़ आयें, कभी मुझे भी विवश होकर उन्हें अपने हाथ दिखाने पड़ें।

—डॉ० शिव प्रसाद गोयल, हिन्दी विभाग,
कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय, कुरुक्षेत्र (हरियाना)

जैनेन्द्र की कहानी

—विष्णुकान्त शास्त्री

जैनेन्द्र का हिन्दी कथा साहित्य में प्रवेश एक बड़ी घटना के रूप में स्वीकार किया गया था। स्वयं प्रेमचन्द जी ने कहा था 'हिन्दुस्तान में कोई गौर्की है या हो सकता है तो वह जैनेन्द्र है।' मैथिलीशरण गुप्त का उच्छ्वसित उद्‌गार था, 'हिन्दी साहित्य के कथाक्षेत्र में हमने (जैनेन्द्र में) रवि और शरत् बाबू को एक ही साथ पाया।'' साहित्य में सहज ही स्वीकृत और प्रतिष्ठित हो जाने का ऐसा सौभाग्य बिरलों को ही मिलता है।

और यह भी सत्य है कि हिन्दी के नए कहानीकारों में जितना आक्रोश जैनेन्द्र के प्रति है, उतना और किसी के प्रति नहीं। हाल ही में कलकत्ते में हुए हिन्दी कथा-समारोह में नई पीढ़ी के कथाकारों ने जैनेन्द्र की उपस्थिति में उनकी कथादृष्टि का तीव्र विरोध किया। एक ने हस्ताक्षर-पुस्तिका पर सही करते हुए लिखा, "जैनेन्द्र को मत पढ़ो", तो दूसरे ने नहले पर दहला जमाते हुए लिखा, "जैनेन्द्र को पढ़ कर पछता रहा हूं।"

यह स्वीकृति और विरोध दोनों इसके प्रमाण हैं कि जैनेन्द्र शक्तिशाली कथाकार हैं। उनकी देन स्थायी महत्व की है। सहज ही सवाल उठ खड़े होते हैं कि क्या है ऐसा जैनेन्द्र में जिसके चलते उन्हें इतनी प्रतिष्ठा मिली और अब क्यों उनके प्रभाव से मुक्ति पाने की इतनी छटपटाहट है। वह विशेषता जिसके चलते प्रेमचन्द युग के साहित्यकार उन पर मुग्ध हो गए थे, यह है कि जहां प्रेमचन्द और उनके सहयोगी अधिकतर जीवन के व्यक्त रूप को अपना आधार मान कर चले थे, सामाजिक सम्बंधों के बीच मानव जैसा लगता है,

प्रधानतः उसीका चित्रण उन्होंने किया था, वहां जैनेन्द्र व्यईम मन की गहराइयों में उतरे थे। इस नए स्वाद से हिन्दी के पाठक और पुराने लेखक चमत्कृत हो गए। प्रेमचन्द के विशाल कैनवास के स्थान पर जैनेन्द्र का छोटा कैनवास अपने में कुछ ऐसी सांकेतिधता रखता था कि वह अपनी सीमा में भी असीम लगता था। निश्चय ही जैनेन्द्र की विषय वस्तु सीमित है, नर-नारी का प्रेम बालमन की उलझी अनुभूतियाँ, नैतिक आध्यात्मिक निष्ठा......इन्हीं की आधार बना कर जैनेन्द्र की कथासृष्टि चलती है। इसमें जैनेन्द्र केवल दृष्टा या भोक्ता के रूप में ही नहीं, चिन्तक के रूप में भी आए हैं। जैनेन्द्र के चिंतन को मोटे तौर पर गांधीवादी चिंतन कहा जाता है, किंतु मुझे संदेह है कि जैनेन्द्र की स्थापनाएं सर्वत्र गांधीवाद के अनुकूल हैं। भरतीय परम्परा उनका मूल स्रोत है, इसमें मनोविश्लेषण और व्यक्तिवाद के तत्त्व लिए है। मुझे लगता है कि उनके कलाकार पर उनका चिंतक उत्तरोत्तर हावी होता गया है, इसे मैं शुभ नहीं मान पाता चिंतक समस्याओं का जो हल सुझाता है कलाकार उन्हें अपने चरित्रों के वचनों और व्यवहारों पर आरोपित कर देता है, यह भूल जाता है कि उसकी निष्ठा चिंतक के प्रति ही नहीं, जीवन के प्रति भी है और यह भी आवश्यक है कि कथा में जीवन अपने यथार्थ रूप में या विश्वसनीय संभव रूप में उभरे। इसी जगह नए कहानीकारों को जैनेन्द्र से सबसे बड़ी शिकायत है, चिन्तन या साहित्य से जीवन की ओर आना नए लेखकों को अस्वीकार करना चाहिए कि जैनेन्द्र के प्रति यह शिकायत अंशतः सही है। उनकी अनेक कहानियों के चरित्र और व्यवहार विश्वसनीय नहीं प्रतीत होते, विशेषतः नर-नारी के प्रेम का चित्रण करते समय वे शारीरिक सम्बन्धों के समय भी जब आध्यात्मिक शुचिता की दुहाई देते रहते हैं, जैसे 'परदेसी' और 'एकरात' में, तब यह पूछने की इच्छा होती है कि जीवन में ऐसे नर-नारी कहां हैं जो घनिष्ठ आतमीयता के समय भी इतने पवित्र अबोध और स्थित-प्रज्ञ बने रहते हैं। कहां है वे नारियां जो अपनी तृप्ति के उपरान्त उन्हें छोड़ कर जाने वाले को देवता समझ कर उसकी चरणरज लिया करती हैं? कहां हैं वे पति जो अपनी पत्नियों को उनके पूर्णप्रेमियों से मिलकर खुल खेलने की छूट देते हैं और फिर भी अपने आत्मिक प्रेम से परिपूर्ण विवाह सम्बन्ध को सोल्लास, सोत्साह निभाते हैं? कहा जाता है, "प्रेम के विषय में जैनेन्द्र जी का अपना एक व्यापक मौलिक दृष्टिकोण है, उनके प्रेम का आधार आतमा है, जो सब में, स्त्री-पुरुष में भी सम्बन्धों के यथातथ्य रूपों के अंतस्तल में यथार्थ रूप से भड़कती रहती है। जैनेन्द्र की

प्रेम कहानियों में इसीलिए स्त्री-पुरुष के परस्पर आकर्षण की जो मूल भावना है, वह केवल सेक्स सम्बन्धी नहीं, बल्कि आत्मिक गहराई की यथार्थ रूप की द्योतक होती हैं। मुश्किल यह है कि उनकी यह धारणा उनकी कुछ कहानियों में जिस रूप में मूर्त्त हुई हैं वह उदात्तता की जड़ के सुविधा को छुपाए प्रतीत होती है या किताबी हवाई लगती है। उदाहरण के लिए ध्रुवयात्रा की उर्मिला रिपुदमन से प्रेम भी करती है, उसके पुत्र की माता भी है, पर उससे विवाह नहीं करना चाहती प्रेमिका बनी रह कर प्रेमी को पूर्णता की ओर ले जाना चाहती है। 'एक रात' की सुदर्शन प्लेटफार्म पर सिर्फ एक दिन के परिचित राष्ट्रकर्मी जयराज के अंक में आत्मिक प्रेम का अनुभव करते हुए रात काट देती है। उसी वर्ष माता बन जाने के विश्वास के साथ उसकी चरणधूलि लेकर विदा हो जाती है, 'प्रणयदंश' का प्रद्युम्न सविता को अंक में लेकर उसके बालों को सहलाते हुए यह कह सकता है, "मैंने देवी के रूप में तुम्हें देखा है। तुम मेरे लिए जिस ऐश्वर्य को स्वामिनी हो, उसे मैं धरती पर नहीं ला सकता। सच कहता हूँ, ऐसा अपराध मुझसे स्वप्न में भी नहीं हुआ है। अपनी कविता की अधिष्ठात्री देवी के अतिरिक्त किसी और स्थान पर देखने का अविनय मुझसे नहीं बन सकता।', जैनेन्द्र इतने परम्परावादी भी नहीं हैं कि यौनशुचिता को ही नारी का सबसे बड़ा मूल्य मानें। इतने आधुनिक भी नहीं हैं कि प्रेम के शारीरिक आधार को अनिवार्यतः स्वीकार कर लें। उनका आत्मिक प्रेम जिसमें शारीरिक सम्बन्धों की छूट है, किन्तु विवाह की अनिवार्यता नहीं, जिसमें घनिष्ठता के चरम क्षणों में आवेग, उत्तेजना के स्थान पर अबोधता या स्थितप्रज्ञता रहती है, कम समझ में आता है।

सत् के प्रति उनकी निष्ठा अविचल है। उनकी बहुत ही प्रेम की ऐसी कहानियां जिनपर चिंतक हावी नहीं हो गया है, त्याग की गरिमा से मंडित हैं, जैसे बीरट्रिस, मास्टर जी, पत्नी आदि। सत् के प्रति यह निष्ठा उनके चरित्रों में एक प्रकार का तटस्थ समर्पण का भाव लाती हैं। जो है, जो आएगा ही, उसे बिना हाय हाय करे झेलने की शक्ति भो देती है। इसीलिए उनका प्रवंचिता नारियां भी सहिष्णु हैं। और शाषित पात्र भी। कर्म को भोग कर ही जीवन काटा जा सकता है यह मान्यता उनकी बड़ी दृढ़ है, इसीलिए उनकी कहानियों में उत्ताप, आवेग, आक्रोश, तोड़ फोड़ कर बदल देने का आतुर आग्रह नहीं मिलता। एक प्रकार का स्निग्ध सौम्य व्यथा में भी स्थैर्ययुक्त स्वीकार्य-भाव मिलता है।

समाज की स्थूल समस्याओं की ओर उनका रुझान कम है। फिर भी परि-द्रता जैसे सामाजिक अन्यायों पर उनके कुछ व्यंग्य बड़े करारे हैं। "अपना अपना

भाग्य" इन कहानियों में सर्वश्रेष्ठ है। एक असहाय बालक नैनीताल की ठंड में अकड़ कर मर जाता है, मध्यवर्गीय नैतिकता केवल शाब्दिक सहानुभूति प्रकट करके रह जाती है।

जैनेन्द्र की दृष्टि में "भाव उसमें (कहानी) में प्रधान है, पदार्थ अप्रधान है, बाह्य गौण, अन्त: मुख्य दृश्य जगत् आनुषंगिक, अदृश्य आत्मालक्ष्या" अब हाड़मांस के सजीव समसामयिक मनुष्यों की कहानियों में यह बात एक सीमा तक ही कही जा सकती है, अत: जैनेन्द्र जी ने बहुत सी प्रतीकात्मक कहानियां लिखी हैं, जिनमें जीवन के अदृश्य, अमूर्त, अन्त:सत्य को साकार करने की चेष्टा की गई है। ये कहानियां एक तरफ पौराणिक कहानियों से अनुप्राणित हैं, दूसरी तरफ लोक-कथाओं से सत्य, सेवा, निरहंकारता, उत्सर्ग द्वारा आत्मोपलब्धि जैसे उदात्त मानव मूल्यों को इनमें व्यक्त किया गया है। ऐसी कहानियों में "लाल सरोवर", "नीलमदेश की राज-कन्या", "कामनापूर्त्ति" आदि विशिष्ट हैं। इन प्रयोगों के द्वारा जैनेन्द्र ने एक पुरानी विद्या को नवीन साहित्य के साथ सगौरव जोड़ दिया है।

बालमनोविज्ञान को समझने समझाने में अपनी आन्तरिक सहानुभूति के कारण जैनेन्द्र जी को बहुत सफलता मिली है। इनाम, पाजेब, खेल, आत्मशिक्षण आदि कहानियों में एक तरफ बालकों का स्वभाव समझने की औसत वयस्कों की अक्षमता दूसरी तरफ बालकों के सहज सरल विश्वासी मन की बड़ी मर्मस्पर्शी छवि अंकित है।

जैनेन्द्र की शैली बड़ी ही आत्मीय है। किसी प्रकार की औपचारिकता उसमें नहीं है। मित्रों की बातचीत से लेखक के अपने दैनन्दिन व्यवहार से समाज से किसी भी प्रसंग से बात उठती है और आगे बढ़ कर धीरे धीरे कहानी का रूप ले लेती है। ऐसा नहीं लगता कि आपको अलग से कहानी सुनायी जा रही है। जैनेन्द्र की भाषा भी इस दृष्टि से अद्भुत है। सरल, निरलंकृत; रोजमर्रे की अथच ऐसी भी नहीं कि बिल्कुल पकड़ में आ जाए। सीधी सादी किंतु अपने अंतर में गहराई छिपाए हुए, बोधगम्य फिर भी रहस्यावृत, ऐसी ही भाषा और ऐसी ही कहानी है जैनेन्द्र की। कहानी के दौरान में अचानक चिन्तक उलझ जाता है और फिर ऊंची से ऊंची दार्शनिक बातें उभर आती हैं। यह सच है कि कहीं कहीं ये बातें अपने में महत्वपूर्ण होते हुए भी कहानी के प्रसंग में बेमेल हो जाती हैं। किंतु अधिकतर ऐसा हुआ है कि ये विचार कहानी की आत्मा से अभिन्न हो कर

उसकी महिमा और बढ़ा देते हैं। उदाहरण के लिए कथा का स्त्रोत कहां है, इस पर प्रकट किया गया यह विचार उनके किसी निबन्ध का नहीं कहानी का ही अंश है, "मैं सोचता था—प्रेम जो असत् में सत् और अभाव में आनन्द सृष्ठ करता है, स्मरण जो काल के अनन्त गहर से चीर निकाल कर मृत को अमृत करता है जो निराकार को आकार और अरूप को रूप देता है, जिससे मन एक होता है और व्यवधान मिट जाता हैं जिसमें यह सब है और उत्तरोत्तर होता रहता है. वही दिक्कालहीन मानवमन और उसकी बिरह व्यथा ही क्या वह मर्म नहीं जो अनन्त कथा का स्त्रोत है और अतल है और अक्षय है। "यह अंश अतिशय गरिष्ठ हो गया है और अच्छा होते हुए भी निबन्ध के अधिक उपयुक्त लगता है, किन्तु सौंदर्य पर यह छोटी टिप्पणी; "सौन्दर्य कहां नहीं है ? सौन्दर्य परम सत्य है, परम सत्य की अभिन्न विभूति है, सत्य की भांति सब ठौर व्याप्त है, जिनको जहां आंख है, वहां ही वह उसे देख लेगा। इसी से अम्बर नील सुन्दर है, धूप झक-झकाती धौली खिलती है, धरती हरी भरी भाती है। रात तारों ढकी श्यामल सुहाती है। प्रभात गुलाबी अच्छा लगता है।" ऐसी टिप्पणियां और सूक्तियां जैनेन्द्र की कहानियों की शोभा हैं।

जैनेन्द्र हिन्दी के समर्थ कहानीकार हैं, निश्चय ही उन्होंने हिन्दी कहानी को एक नया आयाम दिया है और उनका एतिहासिक महत्व है। उनसे असहमत हुआ जा सकता है किंतु उनकी उपेक्षा नहीं की जा सकती। जैनेन्द्र के उदयकाल मे उन्हें गोर्की, रवीन्द्र या शरत के रूप में देखने की कामना बहुतों ने की थी किंतु वे न गोर्की बने, न रवीन्द्र, न शरत। वे सिर्फ जैनेन्द्र रहे और यही उनकी सबसे बड़ी महत्ता है। अनुकरण नहीं, सृजन जो भले विवादास्पद हो किंतु मौलिक हो, स्वतन्त्र हो. उनका लक्ष्थ रहा है और असंदिग्ध रूप से उनका साहित्यिक व्यवितत्व उनका अपना है।

———

काव्य-धारा

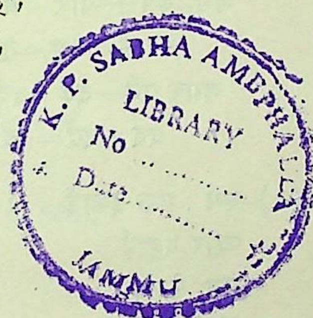
दर्द-बोध १६ कविताएं

—तारा दत्त 'निर्बिरोध'

(१) कुछ भीतर से टूट गया
घट गया
कुछ बाहर जुड़ गया,
दर्द भीतरी तहों से चला
बाहरी सतहों पर मुड़ गया
जैसे कोई अनायास ही
उजाले में मिला
तम में बिछुड़ गया।
दर्द भीतरी तहों से चला··· ।

(२) जो देखा, वह रूप था
जो अदेखा रहा, वह प्यार
और जो कहा नहीं गया
दर्द दर्द दर्द
अनजिये क्षणों का दर्द
अनगाए क्षणों का दर्द
अनबोले क्षणों का दर्द ।

(३) सारा शहर
एक दम असभ्य, अषढ़-गंवार,
सब संस्कृतियां
भ्रांतियां
गूंगी- बहरी- अंधी,
विश्व का हर साहित्य
कोरा, अनलिखे शब्दों - सा
अर्थहीन,
और आदमी
आदमी जैसा कुछ नहीं
किसी जानवर जैसा भी नहीं,
तोता या चिड़िया भी नहीं,
यदि किसी मन को
दर्द अनुभवता नहीं ।



(४) हर बड़ी से बड़ी झूठ में
दर्द
हर बड़ी से बड़ी सच में
झूठ, मगर दर्द नहीं ।

(५) बनावटी दुनिया में
आदमी
अच्छी बुनावट का एक स्वैटर
जिस में रूप : एक डोर
प्यार : एक सलाई
और दर्द :
एक ऐसा घर
जिसे सलाई ने नहीं बुना
अर्थात् आदमी
जिसे दर्द ने दर्द से नहीं बुना ।

(६) क. माने कबूतर
ख. माने खरगोश
ग. माने गधा
मगर द. माने दबात
(दर्द नहीं)

(७) हर बोलता हुआ स्वर
रूप,
हर बसा हुआ घर
प्यार,
और जो दोनों से अलग
दर्द,
जिसका न कोई स्वर
न कोई घर

(८) दर्द : एक समीकरण
जैसे, रूप + प्यार = मन
प्यार – रूप = तन
मगर दर्द – दर्द = दर्द
दर्द + दर्द = दर्द

(९) रूप : एक इकाई
प्यार दहाई
मन सैंकड़ा
और दर्द,
जिसकी कोई संख्या नहीं
जिसका कोई नाम नही।

(१०) मित्र : एक चित्र
कभी पौराणिक, कभी नव्यतम,
पत्नी : एक मित्र
कभी निष्ठा, कभी भरम,
मगर दर्द : एक संकल्प
जो न कभी टूटे
जो न कभी पूर्ण हो।

(११) रूप एक बालक था
हर बार परायों के साथ
गन्दे गलियारों में खेला,
प्यार जवानी का एक पड़ाव था

जहां बारहोंमास लगा रहा
यौवन का मेला,
मगर दर्द, वृद्धा के बचपन-सा था
जिसको खुशी किसी ने नहीं समझी
जिसका प्यार किसी ने नहीं आंका।
इसलिये मन
किसी के साथ नहीं रमा,
कहीं चला, कहीं मुड़ा
कहीं थमा,
मन किसी के साथ नहीं रमा।

(१२) दर्द, महज एक शब्द
बहुचर्चित-सा एक शब्द
(मगर ब्रह्म नहीं)
जिसे किसी ने कलम से नहीं लिखा,
जो मिला तो श्रद्धाबतन होकर
जिसे खोजा गया तो कहीं नहीं दिखा,
और कभी कहीं सुना तो
सूली पर चढ़ गया,
एक से चला, दूसरे-तीसरे को
अदेखा कर
अजानों की ओर बढ़ गया।

(१३) तुम, एक राजनैतिक रूप
वह, एक व्यापारिक प्यार
और मैं
साहित्यिक दर्द
फिर तुम, वह और मैं
चाहें भी तो क्यों मिलें
क्यों नहीं हर बार
एक दूसरे को
कोसें,
छलें
खलें ?

(१४) सारा कोलाहल, दुनियावी छल,
बड़ी-बड़ी भीड़ें महज शोर-
और दर्द
अबूझे ऐकान्त को जीने वाले
किसी बड़े मौन का
सबसे बूढ़ा सम्बल।

(१५) दर्द अंक गणित और रेखा गणित
दोनों में एक-सा;
न कहीं जुड़े
न कहीं घटे
और जिसका जोड़
हर कोई नहीं जानता
जिसके कोणों को
हर कोई नहीं पहिचानता
दर्द अंकगणिद-सा
दर्द रेखागणित-सा

(१६) किसी जूड़े से झटक दिये गये
फूलों-सा दर्द,
किसी व्याहता के पाँबों चलते
घाबों का दर्द,
उलझे हुए कुन्तलों की
छाबों का दर्द,
हारे-थके पाँबों के
बेनाम पड़ावों का दर्द,
भोगे हुए अभियोगों-अभावों का दर्द,
मगर किसी का नहीं कोई दर्द
जो है :
कहने-सुनने का दर्द
दिखाने-बनने का दर्द
किसी बड़े और खोखले शहर की
अर्थहीन, मूल्यहीन और चरित्रहीन
गतिविधियों का दर्द।

———

ग़ज़ल

—मनसा राम शर्मा 'चंचल'

तुम्हारे नयन कोरों में प्रणय की ज्योति जलती है।
कहूं मैं किस तरह साथी तुम्हारे भाव अच्छे हैं।

नहीं जब तुम लगा पाए हृदय पर प्यार की मरहम।
तो समझेगा यहां कैसे कोई कि घाव अच्छे हैं।

सदा से दूर रह कर हर किसी को कोसते रहना।
सभी ऐसा कहेंगे ही न इसके चाव अच्छे हैं।

किया जब प्रेम तुम से तो सदा इस को निभाएंगे।
नहीं तो फिर कहोगे तुम न इस के ताव अच्छे हैं।

लगी आंखें अगर तुम से, न इस में दोष मेरा है।
सभी तेरे लिए कहते कि हम से हाव अच्छे हैं।

यहां कुछ लोग बिन मतलब करें आलोचना मेरी।
मगर जब मात कहते हैं तो कहते दाव अच्छे हैं।

———

डोगरी लोक गीत



मियां अलगोजुआ, मियां अलगोजुआ।
दमरो गी सौगी लेई जा बो साथैं।।

अलगोजा बजदा पत्तने गी,
मेरा मन नईं लगदा कत्तने गी,

अलगोजा बजदा टल्लेयां गी,
मेरा मन नईं लगदा कल्लेयां जी,

अलगोजा बजदा दोई-दोई के,
मेरा मन नईं लगदा रोई-रोई के,

मियां अलगोजुआ, मियां अलगोजुआ।
दमरो गी सौगी लेई जा बो साथैं।।

———

कथा-साहित्य

कहानी

अनुबंध

—वेद राही

तांगा ज्यों ज्यों आगे बढ़ रहा है, वह बेचैन होता जा रहा है। एक कचौटती हुई असुविधा हो रही है। उसने मां का कहना ही क्यों माना ? क्यों चला आया ? सवेरे से अब तक सौ मील का सफर तय करने के बाद थकावट से ज्यादा इस बात का एहसास हो रहा है कि उसने यह मूर्खता क्यों की। उसके ख्याल में लता के पास जाने का उसे कोई अधिकार नहीं। यदि लता ने जरा सी भी उपेक्षा कर दी तो ....

"कुछ भी हो, वह तुम्हारी बहन है।" मां ने बार बार एक ही बात दुहराई, "तुम्हारे जीजा जी बहुत अच्छे आदमी हैं। इतने बड़े आफीसर होने के बावजूद उनमें गरूर नाम को नहीं। तुम उनके वहां जाओगे तो वे खुश होंगे।"

"बहन" और "जीजा जी" शब्द उसे अच्छे नहीं लगे। पर वह मां का प्रतिवाद नहीं कर सका। इससे कुछ लाभ भी नहीं था। बह जानता था कि उसे जाना पड़ेगा। जिस दिन उसने बस का टिकट लिया था, तब भी वह चाह रहा था किसी तरह उसका जाना टल जाये, यह जानते हुए भी कि ऐसा असम्भव है।

तांगे के हचकोलों में वह लता की शक्ल याद करने लगा। धान-पान सी लड़की जो ज़ोर की हवा से हिलने लगे। सांवला रंग। सूखा हुआ रक्तहीन चेहरा, तोता-मार्का लम्बी नाक। बालों की चुटिया ऐसी कि मरी हुई चुहिया

याद आये। वह तो कभी बात भी नहीं करता था उससे। उनके घर में लता के आने न आने का कोई महत्व नहीं था। जब कभी आती मां उसे किसी न किसी काम में लगा देती। कभी बरतन मांझने पर, कभी कपड़े धोने पर। वापस जाने पर, जो सब्जी-भाजी बनी होती ले जाती, कटोरा भर कर। तब मां अक्सर कहा करती थी, "गरीबों के घरों में बेटियां नहीं होनी चाहिएं।" मां ने उन लोगों के साथ कभी घनिष्ठता नहीं दिखलाई थी। इतना नज़दीकी रिश्ता होने के बावजूद कभी यह नहीं कहा कि वह भी अपने लोग हैं। जब तक चाचा जी जीवित थे: तब वह छोटा था: मां का उनके घर में आना जाना था। चाचा जी की मृत्यु के बाद चाची को सिलाई की मशीन घर पर रखनी पड़ी थी। लता की बढ़ती हुई उम्र के कारण दिन-रात सिलाई करके भी गुज़र नहीं होती थी। इसीलिए चाची लता को उनके घर में भेजती थी। छोटा-मोटा काम कर के लता कुछ न कुछ ले जाती। ताऊ का घर था, इज्जत बची रहती।

तांगा एकाएक रुका तो वह भी चौंका। ख्यालों का सिलसिला टूट गया।

"यही एक सौ अठाईस नम्बर का मकान है।" कहते हुए तांगे वाला नीचे उतरने लगा। वह भी नीचे उतर आया। आगे बढ़कर उसने कोठी के फाटक पर लिखा नम्बर पढ़ा और फिर वापस आकर सीट के नीचे से सूटकेस और बिस्तरा निकालने लगा।

तांगा जा चुका था, और फाटक बन्द था। वह सोच रहा था, फाटक खोले कि नहीं। दीवार के साथ पड़ा हुआ सूटकेस और सूटकेस के ऊपर रखा हुआ बिस्तर भी, जैसे उसी के समान सोच में डूबे थे। मानो दुविधा में पड़े हुए हों।

आखिर साहस करके उसने हाथ बढ़ाया और फाटक खोला। उसी समय ख्याल आया कहीं कोई कुत्ता न हो। क्षण भर के लिए उसका रंग पीला पड़ गया। पर कुत्ता होता तो अब तक उसकी एड़ियों में दांत गाढ़ चुका होता। वह आगे बढ़ा। बरामदे के पास पहुँचा किसी ने सामने का दरवाजा खोला।

"नमस्ते भापा जी।"

वह पहचानने की कोशिश कर रहा है। भरी हुई देह, कसकर बांधी हुई अत्यन्त आकर्षक सफेद साड़ी, पूरी बाहों का पीला स्वैटर, अजंता स्टाइल घुमावदार ऊंचे ऊंचे बाल, माथे पर लाल रंग की त्रिशूली-बिन्दी—हाथ जोड़कर नमस्ते कर रही है। "भापा जी" का उच्चारण बिल्कुल वैसा ही है।

"नमस्ते" उसने अपने आपको व्यवस्थित करने की कोशिश की। हलके से मुस्करा दिया। हाथ जोड़ने की कोशिश में बाहें केवल हिल कर रह गयीं।

"आइए, आइए, सामान कहां है आपका?" कहते हुए लता बाहर तक आ गयी।

"यहीं पड़ा है।" वह सामान लाने के लिए मुड़ा।

"अम्मां ने आपके आने के बारे में लिखा था।"

एक हाथ में सूटकेस और दूसरे में बिस्तर लेकर वह आ गया।

"मुझे दीजिए।" लता ने हाथ बढ़ाया।

"अरे नहीं, नहीं उसने लता को सूटकेस नहीं दिया।

"यहीं रहने दीजिए नौकर अंदर ले आयेगा।"

"इस में है क्या, मैं खुद ही ले चलता हूँ।"

वह लता को ठीक से देख नहीं पा रहा। उसे विचित्र लग रहा ही। यह तो वह लता ही नहीं। न उसे तुम कह पा रहा है, न आप, न लता हो। मानो राह चलते भूल से किसी ऐसे व्यक्ति को बुला लिया है, जो पास आने पर पहचान में नहीं आ रहा।

इस घर की कल्पना भी उस ने नहीं की थी। ऐसे घर में वह आज तक कभी नहीं रहा। ड्राईंग रूम यों सजा है, जैसे कोई म्यूजियम हो। "यह आपका कमरा है" कहकर लता जिस कमरे में उसे ले आई है, वह भी इतना अप-टू-डेट है कि उसे अपना आप आऊट-आफ-डेट लगने लगा है। नौकर ने सूटकेस और बिस्तर अन्दर लाया तो उसका जी चाहा दोनों चीजों को उठाकर खिड़की से बाहर फैंक दे। दोनों का मैलापन इस कमरे के लिये अपरिचित था।

"ताई कैसी है?"

"ठीक है।"

"अम्मा—"

"चाची से तो आते समय मिल ही नहीं पाया मैं।" इसके अतिरिक्त कोई और उत्तर हो भी नहीं सकता था। पर यह कहते हुए उसे लगा उससे कोई

शर्मनाक अपराध हो गया है। ग्लानी की छुरी तेज़ धार के साथ उसकी पसलियों को चीर गयी। चाची से मिलकर आया होता तो कम से कम इस कमरे में यों दम तो न घुटता।

"भापा जी आप बैठते क्यों नहीं ?" लता साग्रह बोली।

वह बैठ गया।

"थोड़ी देर आराम करिये, मैं आपके नहाने के लिये गर्म पानी करवाती हूँ।" कह कर लता कमरे से बाहर चली गयी। उसने लता को बाहर जाते हुए देखा। उसे फिर लगा कि यह वह लता ही नहीं। यह तो किसी बड़े घर की पढ़ी लिखी सलोकेदार बहू है। उसकी चचेरी बहन लता : जो बहन कम और एक अनाकर्षक नौकरानी ज्यादा थी। छः ही महीनों में इतनी नहीं बदल सकती।

छः महीने तो हुए हैं विवाह हुये। न चाहते हुए भी उसे शरीक होना पड़ा था। लोग तरह तरह की बातें कर रहे थे। कोई कह रहा था, "बिना बाप की बेटी बूढ़े से ब्याह दी गयी।" कई लोग तो उन्हीं पर ताना कस रहे थे, "जब रिश्तादारों ने भी सहायता नहीं की तो और क्या हो सकता था।" उसे चाची पर बहुत गुस्सा आया था, जिसने अठारह साल की बेटी को चालीस साल के रण्डवे से व्याह दिया था। वह और उसकी मां—दोनों वहां मौजूद थे जैसे वहां उनका अस्तित्व ही नहीं। उस लज्जा जनक स्थिति में उन्होंने यहां तक बड़बड़ाना शुरू कर दिया था, "हमारा इन लोगों से क्या नाता है।"

पर इस समय उसे लग रहा है सब ठीक हुआ। लता भाग्यवान है। तभी तो छः महीनों में इतनी मोटी हो गयी है। तीस की तो यह स्वयं लगने लगी है। चालीस साल का पुरुष भी बूढ़ा नहीं होता। कितना बड़ा घर है, किसी चीज की कमी नहीं। यह सब सोचते हुए उसने पूरे कमरे में एक नज़र दौड़ाई।

"भापा जी पानी रख दिया है", लता अंदर आई, "नहा लीजिए।"

उसने लता की ओर देखा और मुस्करा दिया। लता भी ज़रा सी मुस्करा दी। मुस्कराने के बाद उसने नजरें नीची कर लीं। वह सूटकेस खोलने के लिए उठा।

"मैंने आपके जीजा जी से बात कर ली है। वह कह रहे थे काम हो जाएगा, मामूली बात है।" लता ने सोफे की बांह पर बैठते हुए कहा।

उसका दिल उत्साह से भर गया। उसके लिए यह बहुत बड़ी बात थी। सूटकेस के पास पहुँचकर उसने मुड़कर लता की ओर देखा, और फिर मुस्करा दिया। लता भी मुस्कराई। ठीक कहते हैं लोग, वह सोचने लगा, "आजकल तरक्की पाने के लिए किसी सैक्रेटरी का साला होना ज़रूरी है।"

कोट के अन्दर की जेब में से चाबी निकालकर उसने सूटकेस खोला। सहसा याद आया कि औपचारिकतावश मां ने लता के लिए दस रुपये भेजे हैं, जो उसने अलग ही रखे हुए हैं। वह खुश हुआ। उसकी मां सचमुच ही बहुत व्यावहारिक स्त्री है। उसने वे रुपये जेब से निकालने चाहे, ताकि लता को दे दे। लता बहुत खुश होगी, उसने सोचा, लेकिन अचानक ही उसका दिल बुझ गया। उसे ख्याल आया कि चाची के पास तो वह गया ही नहीं था। वह भी अवश्य कुछ न कुछ भेजती। अपनी मां का भेजा हुआ कुछ न पाकर लता दुखी होगी। उसे अपने आप पर गुस्सा आने लगा। मन ही मन खुद को उसने कई गालियां दे डालीं। मां के दिए रुपये उसने वहीं के वहीं रहने दिए।

मैला सा तौलिया निकालते हुए उसे शर्म महसूस हुई। इस उजले घर में उसे कुछ भी मैला नजर नहीं आ रहा था। कोट निकाल कर उसने खूंटी पर टांगना चाहा। इससे पहले ही लता ने अलमारी खोलकर एक हेंगर निकाला और उसके हाथों से कोट लेकर हेंगर में डालने लगी। उसे और भी शर्म आई, कोट हद से ज़्यादा मैला था।

बाथरूम में जब उसने भीतर से चटखनी लगा दी तो अचानक उसे महसूस हुआ कि वह किसी सुरक्षित स्थान में पहुंच गया है। कुछ देर के लिए कम से कम उसके सामने कुछ ऐसा तो नहीं जो निरंतर उसे कचौटता चला जा रहा है। कपड़े उतारने के बाद वह ओर भी हलका हो गया। उसका जी चाहा वह वैसे ही वहां खड़ा रहे। पर अचानक एक पुरानी बात की याद ने उसका सारा मजा किरकिरा कर दिया।

साल भर हुआ होगा इस बात को, या इससे भी कम। लता उनके बाथ-रूम में कपड़े धो रही थी। मां ने कपड़ों का ढेर उसके सामने फैला रखा था। वह खाना खाकर कहीं बाहर जाने की जल्दी में था। हाथ धोने के लिए बाथरूम में पहुँचा। कपड़ों पर थापियां मारती हुई लता ने उसकी ओर नहीं देखा। और साबुन के चंद छींटे उसके सूट पर आ पड़े। तब उसने आव देखा न ताव लता को ताबड़तोड़ अनगिनत जलीकटी सुना दीं—बेवकूफ, मूढ़, अंधी देखा नहीं जाता।

सब कुछ सुनने के बाद भी लता सर झुकाये कपड़ों पर थापियां मारती रही थी। शायद रोने लगी थी।

नहाने के बाद उसे फिर अच्छा अच्छा लगने लगा। रास्ते की गर्द निकल गई। भीतर बाहर एक ताज़गी महसूस होने लगी। बाल बनाकर जब वह सोफे पर बैठा तो नौकर चाय की ट्रे उठाये दरवाजे में आता दिखाई दिया। ट्रे टेबल पर रख कर जब वह बाहर निकला तो लता एक ट्रे में पेस्ट्री ग्रोर मिठाई की प्लेटें लिए आ गयी। पर टेबल पर रखने से पहले ही लता के हाथों से ट्रे छूट गयी। ज़ोर की आवाज़ से ट्रे एक तरफ जा गिरी, पेस्ट्री और मिटाई की प्लेटें टुकड़ों में बंट गयीं।

वह हड़बड़ा कर उठ बैठा।

"आप बैठे रहिए भापा जी, यह तो आये दिन टूटती रहती हैं।" कहते हुए लता वैसे ही निश्चल खड़ी रही। झुककर उसने कुछ उठाने का उपक्रम भी नहीं किया। तभी नौकर भागता हुआ आया और ट्रे को सोधा करके प्लेटों के टुकड़े उसमें सहेजने लगा।

"यह सब कुछ कचरे में फैंक दो।" लता ने कौकर को ग्रादेश दिया। "फ्रिज में जो केक रखा है ले आओ।"

नौकर केक ले आया। लता ने चाय के दो कप बनाये। एक उसके हाथ में दिया, और एक से खुद पीने लगी।

"अब तो आपके जीजा जी भी आफिस से आते होंगे।" लता ने कलाई की घड़ी देखकर कहा।

"फिर तो उनके आने पर ही चाय पीनी चाहिए थी।"

,,नहीं, ऐसी क्या बात है, वे आयेंगे तो दोबारा चाय बन जायेगी।"

उसे फिर एक पुरानी याद ने रौंदना शुरू कर दिया। मां ने उसके लिए लता के हाथ चाय भिजबाई थी। भद्दी सी सलवार और एक फटा हुआ कुर्ता पहने लता एक हाथ में चाय का कप और दूसरे में शकरपारों की प्लेट लिये आ रही थी। पायदान में उसका पांव अटक गया और वह धड़ाम से नीचे जा गिरी। प्याली-प्लेट टूट गयी। चीज़ें बिखर गयीं। अभी वह सम्भली भी नहीं थी कि मां ने पीछे से आकर लता का झोंटा पकड़ कर खींचा ग्रौर उसे जोर जोर से पीटने लगी। लता की चीखें निकल गयीं। वह केवल देखता रहा था।

"आपके जीजा जी आ गये।" लता ने चाय का कप टेबल पर रखते हुए कहा।

उसने भी अपना कप टेबल पर रख दिया। नीचे से कार की घर्र घर्राहट सुनाई दे रही थी। उसके दिल की धड़कन बढ़ गयी। उसे शक हुआ शायद जीजा जी उसे न पहचानें। विवाह में केवल औपचारिक सा परिचय हुआ था। उसे लगा कि वह उनकी शक्ल भी भूल चुका है। वह दिमाग पर जोर देने लगा कि उन की शक्ल याद आ जाये।

लता ने उठते हुए कहा, "भापा जी आप चाय पीजिए, मैं उन्हें यहीं लेकर आती हूँ।" कह कर वह बाहर निकल गयी।

उससे चाय नहीं पी जा रही थी। उसे पसीना आने लगा था, और वह निरंतर जूझ रहा था कि उसे जीजा जी की शक्ल याद आ जाये। उसे लगा यदि शक्ल याद नहीं आई तो उसे अपराधी बनना पड़ेगा—वह पकड़ा जायेगा।

"अरे आप कब आये?" सैक्रेटरी साहब ने कमरे में दाखिल होते हुए कहा। वह हड़बड़ा कर खड़ा हो गया। हाथ जोड़कर नमस्ते की। फिर हाथ मिलाया, और कहा, "अभी एक घंटा हुआ।" देखकर भी जैसे सैक्रैटरी साहब की वह शक्ल उसे याद नहीं आई, जो आनी चाहिए थी।

"कहिए वहां सब कैसे हैं?" सैक्रैटरी साहब सामने ही बैठ गये।

"जी सब ठीक है।" उसने बिलकुल बनावटी ढंग से मुस्कराते हुए कहा। सहसा उसने उन्हें पहचानना शुरू कर दिया। उसने देखा कि सैक्रेटरी साहब के बाल जो छः महीने पहले काफी सफेद थे, अब बिलकुल काले हो चुके हैं। पहले से काफी युवा लग रहे थे वे।

"हमारी सास साहिबा कैसी हैं?" सैक्रेटरी साहब ने कनखियों से लता की ओर देखते हुए कहा, और साथ ही मुस्करा भी दिये।

अब उसके पास इसके सिवा कोई चारा नहीं था कि वह कह दे, "जी बिलकुल ठीक हैं। आप लोगों को याद करती रहती हैं।" यह कहते हुए उसने एक बार भी लता की ओर नहीं देखा।

"हमें लता ने बताया था आप कम्यूनिटी डिवैलोपमैंट में काम करते हैं।"

"जी हां ।"

"वहां एक ब्लाक आफीसर की जगह खाली है, आप शायद उसी के लिए काशिश कर रहे हैं ।"

"जी हां ।"

"आपका काम बन जायेगा, डिवलोपमैंट कमिश्नर मेरे दोस्त हैं ।"

उसे विचित्र लगा । "काम बन जायेगा ।" सैक्रेटरी साहब यों कह रहे थे, जैसे कह रहे हों, "सिनेमा का टिकट मिल जायेगा ।" अगर उन्हे पता हो कि ब्लाक डिवैलोपमैंट आफीसर बनने के बाद उसकी तनखाह सात सौ रुपये हो जायेगी, और इतनी तनखाह होने के बाद बड़ें बड़े अमीर लोग उसे अपनी लड़की देने के लिए उसके पीछे पीछे फिरेंगे, और वह जो कहेगा, मिल जायेगा—तो शायद इतनी सरलता से वह यह बात न करते । क्या वे इस बात का महत्व नहीं जानते ? उसके दिल में कौतूहल और उत्साह भर गया था । वह अनायास मुस्करा उठा, और उसने मुस्कराते हुए लता की ओर देखा । लता भी मुस्करा रही थी। उसके चेहरे पर गर्व भी था, जैसे कह रही हो, "देखा अपने जीजा जी को ?"

"अगर आप मेरे भापा जी का काम नहीं बनायेंगे तो मैं आप से बोलूंगी भी नहीं "लता ने भाव दिखाते हुए कहा, एक यही भापा जी हैं मेरे ।"

उसने अविलम्ब मजाख को बढ़ाना ज़रूरी समजा, "और मेरी भी तो एक यही बहन है ।"

"हां हां भई हम सब जानते हैं," कहते हुए सैक्रेटरी साहब जोर से हंस दिये ।

उसने लता की ओर देखा । लता की आंखें भी मुस्करा रही थीं । आंखों की चमक कुछ बोलती सी लग रही थी । वह सब सुन रहा था । सहज और सुखद वातावरण में उसे अपने दिल पर से एक बोझ हटता महसूस हुआ । "लता समझदार है" वह सोचने लगा ।

एक डोगरी लोक कथा का संक्षिप्त रूप

लोक प्रियता

एक बार एक गीदड़ राह भटक कर शहर की ओर चला आया। लोग उसे देखकर चिल्लाए "गीदड़, गीदड़!" वह और तेजी से भागा। ये आवाजें भी जैसे उसके साथ-साथ भाग रहीं थीं, "गीदड़, गीदड़।"

थक हार कर वह एक पुलिया के नीचे आकर बैठ गया। सोचने लगा, कैसी विडंबना है। इस शहर के सभी लोग मुझे नाम से जानते हैं परन्तु मैं किसी एक को भी पहचान नहीं पा रहा हूँ।

बिम्ब–प्रतिबिम्ब

धर्मसाला दा चेता

ओंकार सिंह 'आवारा'

प्हाड़ें दिया धियां तुगी गोदी च खडालेया,
चीढ़ें ते दिआरें ठण्डी चमर झुलाई ऐ ।
झरणें ते नाडुएं न लोरियां सुनाइयां तुगी,
देवियां ने खब्बला ते जड़त जड़ाई ऐ ।।

चन्नें दियां चाननियां केस न सुआरे तेरे,
राती तेरी अक्खीं बिच कज्जल रचाया ऐ ।
धारां दियां रानियां शीरबाद देई तुगी,
साम धाम मूरती छलैपे दी बनाया ऐ ।।

मेरी यादे बिच तूं सजीव होई बस्सनी,
मिम्मी तुगी चेतें आली डिब्बिया च पाया ऐ ।
जन्नी, घर, बूटे कन्ने इक-इक मानुएं ने,
किन्ना किन्ना चिर मिगी रत्तू ने रुलाया ऐ ।।

गीतें दे ओ सुर मिट्ठे भाख गल गोजुएं दी,
समें दियां कुप्पड़ा गी चीरदी गै रौन्दी ऐ ।
सड़क बमार जन चुप चाप लेटी दी,
अपने बजोगा बिच सैहकदी बझोन्दी ऐ ।।

रोम रोम बिच तेरी यादां आले घा न,
थार-थार तेरे पर सजरे ए पैर न–
गुजरे दा समां कुसै चालीं परतोए, हाए,
अपने गै तेरे अज्ज तेरे गित्ते गैर न ।।

———

धर्मसाला की याद

पर्वत कन्याओं ने तुझे अपने अंक में पाला है, और चीड़ तथा देवदरों के वृक्षों ने तुम्हें शीतल वायु से चंवर झुलाया है। झरनों और नाळों ने तुझे मधुर लोरियां सुनाई हैं! देव बालाओं ने तुम्हारे हरे घास पर मोती टांक दिये हैं।

चांद की चांदनी ने तेरे केशों को संवारा है और रात ने तेरी आंखों में काजल रचाया है। पर्वत की रानो ने तुझे आशीर्वाद देकर साक्षात सौंदर्य की प्रतिमा बना दिया है।

मेरी स्मृति में तेरा सजीव निवास है और मैं ने भी तुझे स्मृति की डिबिया में डाल रखा है। तेरे पाषाण, भवन, वृक्ष तथा मनुष्य सभी मुझे रक्ताश्रु रुलाते रहे हैं।

संगीत के मधुर स्वर, मुरली की धुन समय की कड़ी चट्टानों को चीरती है। और वह (बलखाती) सड़क अपने ही वियोग में सिसकती और बिमार सी लगती है।

रोम-रोम तेरी स्मृति के क्षणों से भरा हुआ है, और स्थान २ पर मेरे पग चिन्ह अभी ताजा हैं। काश! कभी बीता हुआ समय लौट आये! आज तो तुम्हारे लिये स्वजन भी पराये हो गए हैं।



A J & K Academy Publication